मेरे गुरुदेव

श्री देवान्द्राश्रम जी महाराज

चन्द्रमा प्रसाद त्रिपाठी
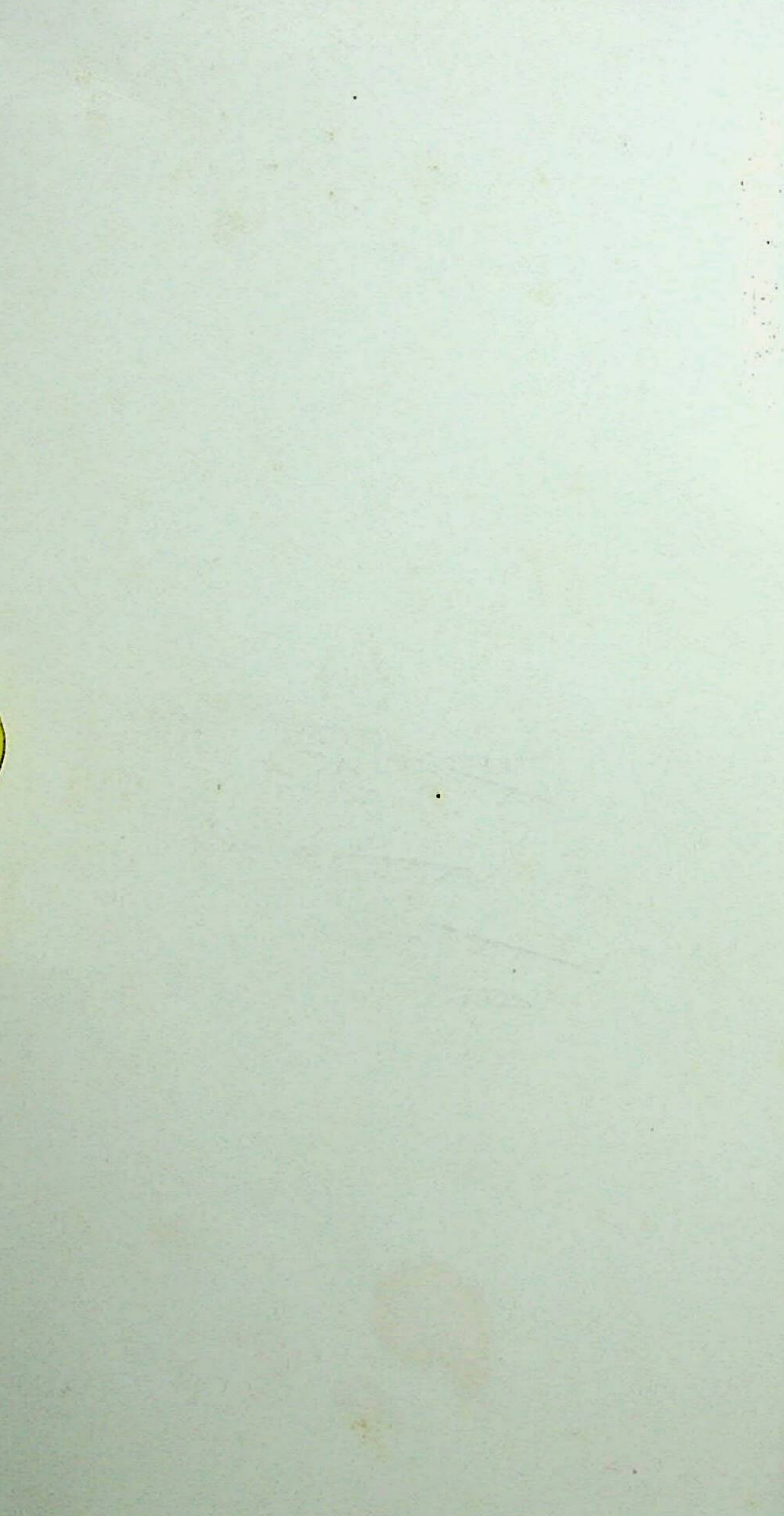
मेरे गुरुदेव
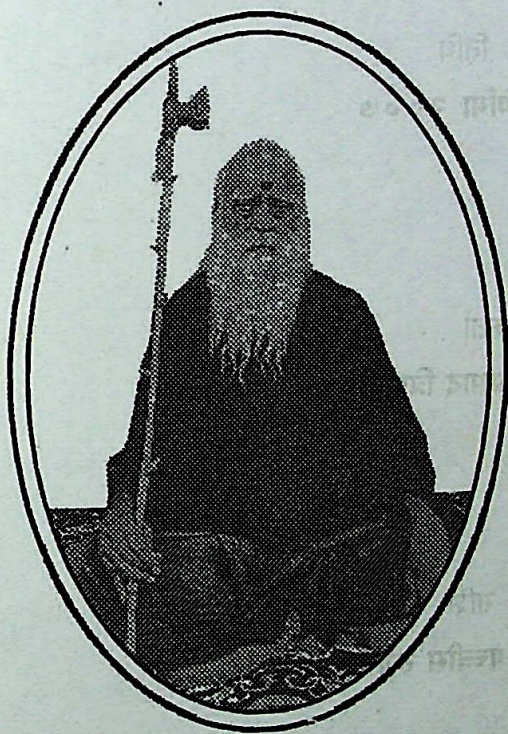
श्री देवेन्द्राश्रम जी महाराज

संकलनकर्ता

चन्द्रमा प्रसाद त्रिपाठी

- पुस्तक का नाम

  मेरे गुरूदेव

- प्रकाशन तिथि

  पौष पूर्णिमा २००७

- संकलनकर्ता

  चन्द्रमा प्रसाद त्रिपाठी

- सहयोग राशि

  २५/- पच्चीस रूपये

- मुद्रक

  योग प्रिंटिंग प्रेस

  मुमुक्षु भवन, अस्सी

  वाराणसी

शुभकामना संदेश

सर्व शक्तिमान सच्चिदानन्द धन परम कारुणिक परब्रह्म परमेश्वर के अनन्य उपासक का जीवन वृत्त लेखन गागर में सागर भर देने जैसा प्रयास है। पं० चन्द्रमा प्रसाद त्रिपाठी जी ने अपने सद्गुरुदेव श्री स्वामी १०८ श्री देवेन्द्र आश्रम जी महाराज के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न संत जीवन वृत्तांत को संक्षिप्त रुप में संजोकर प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है वह निश्चय ही प्रशंसनीय व स्वागतार्ह है। यह संकलन 'मेरे गुरुदेव' नामक पुस्तक के रूप में सुधी पाठकों के समक्ष है तथा एक संत के वाड्मय स्वरूप में लोक मानस के विकारों का शोधन कर 'मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जंगम वीरयराजू' की ही भांति लोक कल्याणकारी है।

वस्तुत: संत जीवन परोपकारार्थ और परमार्थ का हेतु है और परमार्थ ही परमात्मा का स्वरुप है। श्री स्वामी देवेन्द्र आश्रम जी महाराज अपने अल्पवय से ही उस परमार्थ की तलाश में मनसा यात्रा करते रहे और श्रीमद्भागवत् कथा एवं रामचरित मानस कथा के माध्यम से जीव और ब्रह्म राम के सगुण साकार स्वरुप के नाम, रुप, लीला, धाम, सेवन कर मोक्ष मार्ग प्रशस्त करने का उपदेश करते हैं। स्वयं संसार बंधन को छोड़कर संन्यास मार्ग पर चल पड़े जो आज तक मानव कल्याण का हेतु बना है। स्वामीजी एक त्यागी तपोनिष्ठ विरक्त संत के रुप में संत समाज में भी प्रतिष्ठित हैं। स्वामी जी सांसारिक जीवों के उपकारार्थ अनिर्वचनीय सुखोत्पादक प्रेरणा स्रोत बनकर भक्तों का कल्याण कर रहे हैं।

ऊर्ध्वाम्नाय श्री काशी सुमेर पीठाधीश्वर जगद्गुरू शंकराचार्य यति सम्राट

अनन्त श्रीविभूषित स्वामीनरेन्द्रानन्द सरस्वतीजी महाराज

पता - बी 1/128 ए -2 डुमराँव बाग कालोनी, अस्सी, वाराणसी

प्राक्कथन

श्री रामः शरणं मम ।

तीर्थराज प्रयाग में पतित पावनी माँ सुरसरि के पावन तट पर श्री सदगुरुदेव के सानिध्य में कल्पवास करते समय मन में यह संकल्प जागरित हुआ कि अपने गुरुदेव की जीवनी लिखूँ । बहुत से मेरे मित्र और गुरुभाई लोग भी मुझसे उनके जीवन के विषय में जिज्ञासा प्रगट करते रहते हैं । किन्तु नाना प्रकार के व्यवधानों के कारण यह संकल्प पूरा न हो सका । एक बार आसुतोष अवढ़र दानी भगवान शिव की कृपा से श्री गुरुदेव की जन्मभूमि मटीहा ग्राम में उनके साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । एक सप्ताह तक वहाँ रहते हुए मुझे उनके जीवन के विषय में कुछ संकेत और बातें मालूम हुयी । अतः आज असाढ़ मास की अमावस्या दिनांक तीस जून को मटीहा ग्राम में स्थित भगवान शिव मन्दिर के चबूतरे पर श्री गुरुदेव की जीवनी लिखना प्रारम्भ करता हूँ । आज अगहन सुदी एकादशी को काशी में यह कार्य पूर्ण हुआ । उनकी जीवनी के साथ-साथ उनके द्वारा किये हुए प्रवचन के आधार पर उनका एक संक्षिप्त प्रवचन भी संकलित है जिसमें श्री रामचरित मानस के एक चौपाई के माध्यम से भगवान श्री रामचन्द्र का गुणगान किया गया है । इस छोटी सी पुस्तक को श्री गुरु चरणों में समर्पित कर अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ ।

चन्द्रमा प्रसाद त्रिपाठी

●

जीवन परिचय

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।।
ॐ श्री परमात्मने नमः ।

मेरे गुरुदेव श्री १००८ स्वामी देवेन्द्राश्रम जी महाराज इस समय में बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी के मुमुक्षु भवन में निवास करते हैं । काशी सन्यासियों का गढ़ है; दूर-दूर से सन्यासी आकर काशी में निवास करते हैं । काशीवास का शास्त्रों में बड़ा महत्व है, काश्याम वासः । काशी में रहते हुए नित्य गंगा स्नान, बाबा विश्वनाथ का दर्शन एवं सत्संग लाभ होता है; तभी काशीवास की सार्थकता है । काशी में ये चारों बातें सर्व सुलभ है । काशी में रहकर जीवन-यापन करना महत्वपूर्ण है ही, यहाँ मरना भी मंगलमय है । मंगलम् मरणं यत्र । ऐसा लोगों का विश्वास है कि काशी में मरने पर शिव जीव का कल्याण कर देते हैं । संत शिरोमणि श्री तुलसीदास के रामचरितमानस के अनुसार—मुक्ति जन्म महि जान ग्यान खानि अघ हानिकर । जँह वस संभु भवानी सो काशी सेइय कस न ॥ काशी में मरने पर मानुष को कौन कहे गदहे, कुत्ते और घोड़े तक तर जाते हैं । काशी मरे से तर गए गदह कुकुर और घोड़ । ये संत कबीरदास का कथन है । काशी मुक्ति भूमि है, जैसा विश्वास फैला फल । विश्वासम् फल दायकम् ।

मेरे गुरुदेव श्री देवेन्द्राश्रम जी महाराज का जन्म उत्तर-प्रदेश के फतेहपुर जिला के मटीहा ग्राम के एक सरयूपारी सांडिल्य गोत्रीय ब्राह्मण कुल में आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि, सम्वत् १९८३ (उन्नीस सौ तिरासी) में हुआ है । इनके माता का नाम श्रीमती ठकुरी देवी एवं पिता का नाम श्री महादेव तिवारी है । इनके पिता के बाबा श्री शिवपाल बाबा बैरवाँ ग्राम से आकर अपने परिवार के साथ अपनी ससुराल मटीहा मे रहने लगे । स्वामी जी अपने माता-पिता की तीसरी सन्तान हैं । स्वामी जी के परिवार

में सम्प्रति इनके बड़े भाई श्री रामराज तिवारी, उनके पुत्र डाक्टर दिवाकर त्रिपाठी और दो पौत्र शिवकुमार त्रिपाठी एवं आसुतोष मटीहा ग्राम में निवास करते हैं। इनकी जन्मभूमि मटीहा ग्राम गंगा जमुना के बीच एक छोटी सी नदी के किनारे बसा हुआ है। नदी का किनारा होने से जमीन कुछ ऊबड़-खाभड़ किन्तु उपजाऊ है। इसी गाँव में स्वामी जी का एक पक्का मकान एवं साठ बीघे खेती की जमीन है।

स्वामी जी के बचपन का नाम देवराज था। इनके बचपन में ही इनके पिता का देहान्त हो गया। अत: इनका पालन-पोषण इनके चाचा शिवनायक तिवारी ने किया। इस तरह एक बड़े परिवार में इनका बाल जीवन धीरे-धीरे व्यतीत होने लगा। प्राय: तीन चार वर्ष पश्चात् बालक घर से बाहर निकलने लगते हैं और अपनी बाल मंडली के साथ खेलने कूदने लगते हैं। इस अवस्था में खाना-खेलना ही बच्चों का मुख्य कार्य होता है। उन दिनों गाँवों में शिक्षा की व्यवस्था आजकल की तरह नहीं थी। कई गाँवों को मिलाकर ही प्राइमरी पाठशालायें होती थीं। अंग्रेजों का शासनकाल था। तहसीलों में एक मिडिल स्कूल और जिलों में हाईस्कूल होते थे।

आठ वर्ष की अवस्था होने पर बालक देवराज का नाम पास के नरैनी ग्राम में अभिभावकों द्वारा लिखाया गया। प्राय: बालकों को प्रथामिक शिक्षा के लिए दूर-दूर के गाँवों में जाना पड़ता था। अत: बच्चे कुछ बड़ा होने पर ही पाठशाला में शिक्षा हेतु समर्थ होते थे। बालक देवराज भी आठ वर्ष की उम्र में अन्य बालकों के साथ पास के नरैनी गाँव पढ़ने के लिए जाने लगे। नरैनी गाँव इनके घर से तीन-चार मील दूर बसा हुआ है। उन दिनों प्राइमरी पाठशालाओं में कक्षा अ, ब से लेकर चौथी कक्षा तक शिक्षा दी जाती थी। कक्षा चार तक बालकों को गणित, भाषा, इतिहास, भूगोल का प्रारम्भिक ज्ञान हो जाता था। अध्यापक लगन से पढ़ाते थे और बच्चे परिश्रम से पढ़ते थे। उन दिनों कक्षा चार की परीक्षा भी फाइनल परीक्षा के रूप में होती थी। कई विद्यालयों को मिलाकर ही एक परीक्षा केन्द्र होता था जहाँ विद्यार्थियों को परीक्षा देने के लिए जाना पड़ता था। उप जिला विद्यालय निरीक्षक (डिप्टी साहब) विद्यालय में जाते थे। उनकी देख-रेख में परीक्षा होती थी और उनके ही संरक्षण में योग्य अध्यापकों द्वारा मूल्यांकन होता था। बालक देवराज को भी पास के सातों ग्राम में परीक्षा के लिए जाना

पड़ा । देवराज अपनी कक्षा में मेधावी छात्र थे । इन्हें पूरे परीक्षा केन्द्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ । मेधावी छात्र होने पर भी उचित शिक्षा व्यवस्था न होने के कारण इनकी आगे की शिक्षा न हो सकी ।

उस समय तक इनकी उम्र लगभग तेरह-चौदह वर्ष की हो गयी थी । घर में खेती बारी के साथ-साथ दूध देने वाले पशु प्रायः प्रत्येक घरों में पाले जाते थे । पशुओं के चराने का कार्य परिवार के बूढ़े या बच्चे ही करते हैं । आगे की शिक्षा न होने के कारण किशोर देवराज भी अपने खेती बारी में लग गए और गाय, भैंस चराने लगे । अठारह वर्ष की अवस्था तक बालक देवराज एक सुन्दर एवं बलिष्ठ नवजवान के रूप में विकसित हो गए । उन दिनों गाँव में देहाती खेल कबड्डी आदि ही खेले जाते थे । गाँव-गाँव में कुश्ती लड़ने की प्रथा थी । प्रायः हर एक गाँव में अखाड़े होते थे, जहाँ गाँव के नवयुवक एकत्रित हो शारीरिक व्यायाम डंड-बैठक करते थे एवं योग्य पहलवान गुरु के संरक्षण में आपस में कुश्ती लड़ा करते थे । समय-समय पर गाँवों में कुश्ती के दंगल होते थे जहाँ आस-पास के नवजवान इकट्ठा होकर अपनी कुश्ती-कला एवं शारीरिक कौशल का प्रदर्शन करते थे । देवराज को अपने कुल के अनुसार सुन्दर एवं सुडौल काया मिली थी । व्यायाम एवं परिश्रम के माध्यम से इनकी सुडौल शरीर और अधिक सुगठित हो गयी । अस्सी वर्ष की आयु में भी स्वामी जी का शरीर सांगोपांग सुगठित एवं सुडौल है । बलिष्ठ भुजायें एवं उभरा हुआ सीना इनके शारीरिक व्यक्तित्व की पहचान है ।

अब से कुछ दिन पहले समाज में बाल-विवाहों की अधिकता थी । प्रायः लोग अपनी कन्याओं का विवाह ग्यारह-बारह वर्ष तक कर देते थे । कन्या के अनुकूल वर भी तेरह-चौदह वर्ष के होते थे । अब तो सरकार ने ही इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कन्या की उम्र अठारह वर्ष एवं वर की उम्र इक्कीस वर्ष निर्धारित कर दिया है । अतः तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार श्री स्वामी जी का विवाह भी सोलह वर्ष की अवस्था में पहुँचते-पहुँचते बसहाँ के बगलनपुर निवासी रामविलास तिवारी की कन्या कुमारी भगवती देवी के साथ सम्पन्न हो गया । तीन वर्ष के बाद श्रीमती भगवती देवी बहू के रूप में स्वामी जी के परिवार में आ गयीं । इस तरह स्वामी जी अपने ब्रह्मचर्य जीवन से गृहस्थ आश्रम में पूर्णरूपेण प्रवेश कर गए ।

ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश मनुष्य के जीवन का बहुत महत्वपूर्ण मोड़ है । गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते ही मनुष्य के जीवन में विशिष्ट परिवर्तन हो जाता है और संघर्षमय जीवन प्रारम्भ हो जाता है ।

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार हमारे पूर्वज ऋषियों ने मनुष्य के जीने के लिए सौ वर्ष की अवधारणा की थी । कुर्वनेह कर्माणि जीजीवेषत सताम् शतः । हम अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीयें । इस सौ वर्ष के जीवन को ऋषियों ने चार भागों में बाँटा था जिनका नाम क्रमशः ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वान-प्रस्थाश्रम एवं सन्यास आश्रम है । वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ऋषियों ने समस्त मानव जाति को गुण और कर्म के अनुसार चार वर्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में विभाजित किया था । गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने चौथे अध्याय में कहा है;

"चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म बिभागशः" ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।

कर्माणि प्रबिभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः ।

भगवान श्रीकृष्ण ने इनके गुण और कर्म को अठारहवें अध्याय में विस्तार के साथ कहा है ।

शमो दमस्तपः, शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ।।

शौर्यं तेजो घृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ।

परिचर्यात्यक्ताकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।

बहू को धर्मपत्नी के रूप में गृह में आने पर स्वामी जी का गृहस्थ जीवन पूर्ण रूप से प्रारम्भ हो गया । श्री स्वामीजी के पिता इनकी दो वर्ष की आयु में ही मर चुके थे । शादी के दो वर्ष बाद माता जी भी स्वर्गगामिनी हो गयी । स्वामी जी का परिवार एक सामूहिक परिवार था । इनके परिवार में चाचा जी, बड़े भाई एवं तीन चचेरे भाई थे । परिवार के पास अपनी निजी साठ बीघे कृषि भूमि थी । खेती के लिए दो जोड़े बैल, दूध के लिए गाय-

भैंस और सवारी के लिए एक घोड़ा भी था। इनका गाँव एक छोटी सी नदी के किनारे बसा हुआ है। जमीन ऊबड़-खाभड़ है फिर भी उपजाऊ है। आम और महुआ वृक्ष के बड़े-बड़े बाग भी हैं। परती और बगीचे होने से लोग खेती के साथ पशुपालन भी करते थे। गृह कार्य स्वामीजी बड़े परिश्रम और लगन के साथ करते थे। कभी भी कार्य को लेकर अपने भाइयों पर आश्रित नहीं रहते थे। बैलों को खिलाना, गाय-भैंस दूहना, घोड़े की सवारी करना इनका निजी शौक था। घर में नौकर-चाकर की कमी नहीं थी। इनका सम्पन्न परिवार गाँव में विशिष्ट स्थान रखता है। इनके भाई कई बार ग्राम प्रधान रह चुके हैं और आज भी लोग उन्हें प्रधान के नाम से सम्बोधित करते हैं।

गृहस्थ आश्रम में श्री स्वामीजी के दो पुत्र पैदा हुए किन्तु थोड़े समय के बाद ही काल कलवित हो गए। पुत्र शोक एवं संयोगवश इनकी पत्नी बीमार रहने लगी और पेट के रोग से पीड़ित रहने लगी। गृहस्थाश्रम में दस वर्ष तक व्यतीत होते-होते समुचित इलाज होने पर भी इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। पत्नी और पुत्रों के काल कवलित होने पर धीरे-धीरे स्वामीजी गृहस्थ जीवन से उदासीन रहने लगे। परिवार सम्पन्न एवं खुशहाल था फिर भी स्वामी जी का मन गृहस्थ आश्रम में न लगा। स्वामी जी नारि मुई घर सत्यानाशी। मूड़ मुड़ाय भए सन्यासी। के रूप में नहीं बल्कि अपने सात्विक स्वभाववश धीरे-धीरे उपराम वृत्ति को प्राप्त हुए। ये बचपन से ही बड़े सरल और उदार थे। इनके बचपन में यदि कभी कोई घूमता हुआ भिखारी एवं अन्य कोई अतिथि आता था तो वे घरवालों से छिपाकर अपना भोजन उन्हें खिला देते थे। स्वामीजी बचपन से ही आस्तिक प्रवृत्ति के थे। बचपन से ही इनका मन पूजा पाठ में लगता था। अतः युवावस्था में भी गृह कार्य करते हुए नित्य आराधना में भी लगे रहते थे। तीस वर्ष की अवस्था में पहुँचने पर स्वामी जी गृहस्थ आश्रम से दूर रह ब्रह्मचारी के रूप में बानप्रस्थ जीवन ब्यतीत करने लगे। गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का मूल आश्रय है। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति को जो सुख एवं सुविधा मिल जाती है वह अन्य आश्रम में नहीं मिलती। किसी भी आश्रम में रहिए मनुष्य की सबसे मूल आवशयकता भोजन की समस्या बनी ही रहती है और सभी आश्रमवासियों को इसके लिए गृहस्थ पर ही निर्भर रहना पड़ता है। स्वामी जी ने इसके लिए बीच का मार्ग चुना। अपने घर से कुछ दूर नदी के किनारे घने बगीचों के

बीच इन्होंने अपनी एक झोपड़ी बनायी और उसी में ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे। इस तरह गृहस्थ जीवन के सभी भोगों का त्याग कर तपस्या का जीवन ब्यतीत करने लगे।

गृहस्थ आश्रम छोड़ गाँव से दूर नदी के किनारे घने बगीचे में झुरमुटों के बीच एकाकी जीवन ब्यतीत करना बड़ा कठिन एवं भयंकर है। दिन में तो किसी तरह जीवन चलता रहता है किन्तु रात्रि में एकाकी जीवन ब्यतीत करना कठिन होता है। बिरले ही लोग ऐसी विषम और भयङ्कर परिस्थितियों का सामना करने में अपने को समर्थ पाते हैं। "अभयं सत्व सशुद्धि ज्ञान योग व्यस्थित" अभय होना एक गृह त्यागी के लिए अति आवश्यक गुण है। उन्हें अपने जीवन को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में बिताना होता है। अतः स्वामी जी इसी साधना हेतु सर्वप्रथम अपने गाँव के पास बगीचे में नदी के किनारे झोपड़ी बनाकर एकान्त में भगवान का भजन करते हुए अपना जीवन ब्यतीत करने लगे।

कुछ दिनों तक गाँव की कुटी में साधना करने के पश्चात् श्री देवराज जी भ्रमण करते हुए कड़े मानिकपुर के कलेवर घाट पर पहुँचे। वहाँ पर एक दण्डी स्वामी के सानिध्य में दो तीन महीना रहे और उन्हीं से महावाक्य की दीक्षा ली। अब श्री देवराज जी देवराज से देवस्वरूप ब्रह्मचारी हो गए। पहला चातुर्मास ब्रह्मचारी के रूप में कलेवर घाट पर व्यतीत किया। कुछ जमुनापार के लोग माघ मेले में प्रयाग आ रहे थे। ब्रह्मचारी देवरूप उन्हीं के साथ माघ महीने में कल्पवास करने के लिए तीर्थराज प्रयाग आये। माघ मेला समाप्त होने पर ब्रह्मचारी देवस्वरूप अपने गुरु दण्डी स्वामी महादेवाश्रम के निर्देशानुसार कुछ सन्यासियों के साथ काशी चले आये और काशी के चौसट्ठी मठ में रहने लगे। काशी ज्ञान की खानि है। श्री विश्वरूपा जी महाराज उस समय चौसट्ठी मठ के महंथ थे। काशी के विशिष्ट सन्यासियों में महाराज की गणना होती थी। बालक देवराज की शिक्षा केवल कक्षा चार तक ही हुयी थी। उनकी ज्ञान पिपासा पूर्णरूपेण तृप्त नहीं हुयी थी। इस उद्देश्य को लेकर वह अपने ब्रह्मचारी जीवन में संस्कृत पढ़ने के लिए काशी आये किन्तु उनके इस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हुयी। साधुओं और सन्यासियों की सेवा करना यहाँ की मुख्य दिनचर्या रही।

कुछ दिन तक काशी में रहने के बाद वहाँ से सृंगवेरपुर चले गए।

सृंगवेरपुर में एक संस्कृत विद्यालय था। पंडित सूर्यनारायन जी उस विद्यालय के प्रधानाचार्य थे। पंडित जी विद्वान एवं सरल व्यक्ति थे। उन्हीं के सानिध्य में रहकर ब्रह्मचारी देवस्वरूप जी अपना अध्ययन पुनः प्रारम्भ किया। मेधावी तो ये बचपन से ही थे। योग्य गुरु प्राप्त होने पर थोड़े समय में इन्हें संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का ज्ञान हो गया। इस तरह इन्हें संस्कृत भाषा पढ़ने एवं समझने का ज्ञान हो गया। ये योग्य गुरु से श्रीमद्‌भागवत पढ़ना चाहते थे। अतः सृंगवेरपुर से शुकताल चले गए। शुकताल मुजफ्फरपुर से अट्ठारह किलोमीटर दूर देहात में स्थित है। वहाँ पर श्री विष्णु आश्रम जी महाराज रहते थे। शुकताल में भी इन्हें श्रीमद्भागवत पढ़ने का अवसर न प्राप्त हो सका। अतः शुकताल से श्री विष्णु आश्रम जी महाराज के साथ वृन्दावन चले गए।

वृन्दावन में जुग्गीलाल कमलापति का मन्दिर है जहाँ पर पंडित कन्हैया लाल शास्त्री विद्यार्थियों को श्रीमद्‌भागवत पढ़ाते थे। श्री देवेन्द्रस्वरूप ब्रह्मचारी की भागवत पढ़ने की प्रबल इच्छा थी और उन्हें योग्य गुरु की प्राप्ति वृन्दावन में हो गयी। वृन्दावन तो प्राचीन काल से ही श्रीकृष्ण की लीला भूमि रही है। वृन्दावन तो आज भी राधा-कृष्णमय है। आजकल भी वृन्दावन में नित्य भगवान श्रीकृष्ण की लीला, कथा, कीर्तन होता ही रहता है। वृन्दावन की रासलीला अति प्रसिद्ध है। छोटे-छोटे बालक श्रीकृष्ण और राधा की लीला प्रस्तुत करते है। लोगों का मन रासलीला में निमग्न हो जाता है। तीन वर्षों तक वृन्दावन में रहकर श्री देवेन्द्रस्वरूप ब्रह्मचारी को भागवत का ज्ञान हो गया। वृन्दावन से मेरे गुरुदेव द्वारिका चले गये। वहाँ पर द्वारिकाधीश मन्दिर में श्रीमद्‌भागवत का पारायण किया। इस तरह श्रीमद्‌भागवत की कथा कहते हुए अठारह महीने तक द्वारिका में अपना जीवन व्यतीत किया। मेरे श्री गुरुदेव ने मथुरा और पुस्कर में भी श्रीमद्‌भागवत का पारायण किया और भक्तों को श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनाई। इस तरह परिभ्रमण करते हुए श्रीमद्‌भागवत की कथा कहने लगे। इस तरह भ्रमण करते हुए श्री गुरुदेव पुनः काशी आये। काशी में उन्होंने चौसट्ठी मठ के महन्थ को भी श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनाई और चौसट्ठी मठ में रहने लगे। चौसट्ठी मठ में बंशी स्वामी का समय-समय पर आना-जाना होता रहता था। मेरे श्री गुरुदेव श्री बंशी स्वामी के साथ मीरजापुर जिले में भ्रमण के लिए गये। मीरजापुर जिले में कोटवा गाँव के पास पहाड़ पर श्री बालनाथ का मंदिर है।

स्थान पहाड़ पर होने के कारण दर्शनीय है । बंशी स्वामी के साथ भ्रमण करते हुए मेरे श्री गुरुदेव सीखड़ ग्राम में पहुँचे ।

सीखड़ ग्राम में गंगाजी के किनारे एक स्थान है जो बावन जी के नाम से जाना जाता है । बावन जी पर अति प्राचीन काल से बावन भगवान का मन्दिर था और उसी से सटी हुयी एक छोटी की कुटी थी । उसी के सामने एक विशाल वटवृक्ष था । बावन जी का स्थान बस्ती से करीब एक किलोमीटर दूरी पर है । घने वृक्षों और विशाल वटवृक्ष से जंगल के दृश्य सा लगता था । बावन जी कुटी पर एक सिद्ध महात्मा श्री शंकराश्रम जी महाराज दिगम्बर रूप में रहा करते थे । श्री शंकराश्रम जी कानपुर के अश्विनी घाट पर भी रहते थे । आज भी उनकी शिष्य परम्परा में श्री स्वामी सूर्यबोधाश्रम जी महाराज अश्विनी घाट आश्रम में आसीन हैं । इसी अश्विनी घाट के आश्रम में परम सिद्ध महात्मा श्री शंकराश्रम जी महाराज ब्रह्मलीन हुए थे । श्री स्वामी शंकराश्रम जी के सीखड़ बावन जी वाले आश्रम पर उनके एक शिष्य श्री स्वामी ब्रह्माश्रम जी महाराज रहने लगे । स्वामी श्री ब्रह्माश्रम जी महाराज के कार्यकाल में बावन जी की कुटी में विशेष परिवर्तन हुआ । विशाल वटवृक्ष अपने आप धराशायी हों गया । इमली के घने वृक्ष काट डाले गए । बाँस की घनी कोठिया भी काटकर मैदान के रूप में बदल गयी । सन् १९४५ में बसन्त पंचमी के अवसर पर स्वामी जी ने एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की जो सन् १९४५ ई० में एक अंग्रेजी स्कूल हाईस्कूल के रूप में परिवर्तित हो गया । श्री स्वामी जी ने बामन भगवान के मन्दिर के स्थान पर एक सुन्दर भगवान विष्णु का मन्दिर बनवाया । विष्णु भगवान का मन्दिर एक सुन्दर कुटिया और श्री शंकराश्रम इण्टर कालेज आज भी श्री ब्रह्माश्रम जी महाराज का समाज के लिए एक देन है ।

इसी कुटिया में मेरे गुरुदेव ने श्री वंशी स्वामी के साथ सन् १९७२ में चातुर्मास किया । सन् १९७२ ई. में गंगा जी में भयङ्कर बाढ़ आयी । सारा इलाका जलमग्न हो गया । कुटिया भी चारों तरफ पानी से घिर गयी और श्री गुरुदेव को वंशी स्वामी के साथ बस्ती के एक स्कूल में जाना पड़ा । चातुर्मास के बाद श्री गुरुदेव काशी चले गए । श्रीमद्भागवत के साथ-साथ मेरे गुरुदेव रामायण की कथा भी अपनी विशिष्ट शैली में कहते हैं । दूसरे साल वे पुनः सीखड़ ग्राम में वैशाख के महीने श्री रामनाथ पाण्डेय के यहाँ

गए। सीखड़ से पास के ही गाँव भुआलपुर में उनके एक रिश्तेदार के यहाँ भी गए। रात्रि में उनकी रामायण की कथा हुयी। मुझे भी उनकी कथा सुनने का सौभाग्य मिला। दूसरे दिन प्रातःकाल गंगा जी के किनारे पर मुझे उनके दर्शन हुये और प्रारम्भिक परिचय हुआ और वह आज अति घनिष्ठता के रूप में वर्तमान है।

काशी के चौसट्ठी मठ में रहते हुए मेरे गुरुदेव बनारस और मीरजापुर के ग्रामीण क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए गृहस्थों को श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरित के माध्यम से उपदेश देते रहे और इनके माध्यम से गृहस्थों को सत्संग का लाभ मिलता रहा। श्री स्वामी कृष्णदेवाश्रम जी महाराज उस समय चौसट्ठी मठ के छोटे महन्थ थे। काशी के अस्सी घाट पर दक्षिणामूर्ति नाम का एक मठ है। मठ के महन्थ श्री स्वामी विश्वनाथ आश्रम जी चौसट्ठी मठ में आया जाया करते थे और श्रीकृष्णदेवाश्रम जी महाराज से उनकी घनिष्ठता थी। श्री विश्वनाथ आश्रम जी महाराज की भेंट ब्रह्मचारी देवस्वरूप से चौसट्ठी मठ में हुयी। उन्हें एक योग्य ब्रह्मचारी की आवश्यकता थी। महंथ जी महाराज ब्रह्मचारी से प्रभावित हुए और उन्होंने श्री कृष्णदेवाश्रम जी से श्री देवस्वरूप ब्रह्मचारी को अपने साथ रहने के लिए अनुरोध किया। स्वामी जी ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और श्री देवस्वरूप ब्रह्मचारी महन्थ जी के साथ दक्षिणामूर्ति मठ में चले गए और चार-पाँच वर्षों तक उनकी बड़ी निष्ठा एवं श्रद्धा के साथ सेवा करते हुये व्यतीत किये। श्री विश्वनाथ आश्रम जी महाराज श्री देवस्वरूप की सेवा और योग्यता से प्रभावित होकर वैशाख सुदी तीन (अक्षय तृतीया) सन् १९७९ सन् उन्नीस सौ उन्यासी को सन्यास की दीक्षा दे दी और तभी से ब्रह्मचारी देवस्वरूप ब्रह्मचारी से स्वामी देवेन्द्राश्रम जी महाराज हो गए। सन्यास की दीक्षा के समय इनके बड़े भाई श्री रामराज जी और एक रिश्तेदार शास्त्री जी काशी में आये थे।

संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के पश्चात् स्वामी जी महाराज दण्डी स्वामी के रूप में अपने गुरुदेव श्री विश्वनाथ आश्रम के सानिध्य में पूर्णरूपेण दक्षिणामूर्ति मठ में रहने लगे और बड़ी श्रद्धा और निष्ठा के साथ उनकी सेवा करने लगे। गुरु की आज्ञा के अनुसार स्वामी जी कभी-कभी परिभ्रमण के लिए निकल जाते थे और नगरों तथा देहातों में गृहस्थों के घर निवास करते हुए श्रीमदभागवत एवं रामायण के माध्यम से नीति, धर्म और व्यवहार का उपदेश देते रहे। इस तरह लगभग चार वर्ष सन्यास जीवन के बीत गए। इनके गुरु श्री विश्वनाथ आश्रम जी महाराज इनकी सेवा, श्रद्धा, विद्वता एवं

विनम्रता से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वामी जी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकल्प कर लिया किन्तु उनका यह संकल्प वैधानिक रूप न ले सका ।

संयोगवश स्वामी जी एक बार अपने भ्रमण के लिए निकले हुये थे । इनके श्री गुरुदेव की तबियत अचानक खराब हो गयी और वे ब्रह्मलीन हो गए । गुरु के देहावसान का समाचार पाते ही स्वामी जी अपना सभी कार्यक्रम छोड़कर काशी आ गए और बड़ी धूमधाम से अपने गुरु का भण्डारा किया । श्री गुरुजी के मरणोपरान्त काशी के विद्वान सन्यासियों एवं मठाधीशों ने एकत्रित होकर दक्षिणामूर्ति मठ में चादर ओढ़ाकर इन्हें दक्षिणामूर्ति मठ का मठाधीश बना दिया । दक्षिणामूर्ति मठ की व्यवस्था एक ट्रस्ट के द्वारा संचालित होती है । श्रीमती मुन्नी देवी स्वामी विश्वनाथ आश्रम की भांजी हैं । वे उस समय वाराणसी मंडल में शिक्षा-निदेशिका थीं । श्रीमती मुन्नी देवी श्री रामचन्द्र शुक्ल की पुत्री एवं पंडित ज्ञानचन्द द्विवेदी की धर्मपत्नी हैं । वे ही उस समय ट्रस्ट की मंत्री थीं । उनके अलावा अन्य पाँच संभ्रान्त व्यक्ति ट्रस्ट के सदस्य हैं ।

महंथ बनने के बाद स्वामी जी ने बड़ी कुशलता के साथ मठ का संचालन किया । मन्दिर की ऊभड़-खाबड़ जमीन को समतल कर एक हाल कमरा बनवाने के लिए उसकी नींव रक्खी गई । कमरा गार्डर रखकर पाट दिया गया है किन्तु स्वामी जी के हटने के बाद उसकी छत पूर्णरूपेण नहीं बन पाई और वह अपूर्ण अवस्था में आज भी मठ में उपस्थित है । स्वामी विश्वनाथ आश्रम जी महाराज के एक शिष्य श्री आनन्द आश्रम जी महाराष्ट्र में रहते थे । महन्थ जी के मरने के छः माह बाद वे बनारस में आये और अपनी कूटनीति प्रारम्भ की । उन्होंने श्रीमती मुन्नी देवी से स्वामी जी के खिलाफ कान भरना शुरू किया और उनकी यह योजना सफल रही । श्रीमती मुन्नी देवी मेरे गुरुदेव श्री देवेन्द्राश्रम जी महाराज से कुछ असन्तुष्ट रहने लगीं और उनके स्थान पर श्री आनन्द आश्रम जी को महन्थ बनाने का प्रयत्न करने लगीं । श्रीमती मुन्नी देवी वाराणसी मंडल की शिक्षा निदेशिका थीं । अतः उन्हें भेलूपुर थाना के थानाध्यक्ष का भी सहयोग आसानी से मिल गया । स्वामीजी पर फर्जी डकैती का मुकदमा चलाया गया जो कुछ दिन के बाद समाप्त हो गया । लेकिन मठ के उत्तराधिकार का मामला इस समय भी बनारस के सिविल कोर्ट में चल रहा है । मेरे गुरुदेव अपने शान्त और सरल

स्वभाव के अनुकूल स्वत: दक्षिणामूर्ति मठ छोड़कर अस्सी के हथुआ कोठी में निवास हेतु चले गए । तीन-चार वर्ष हथुआ कोठी में रहने के बाद स्वामी देवेन्द्राश्रम जी महाराज मुमुक्ष भवन के सन्यासी वागीशानन्द तीर्थ एवं जगदीशस्वरूप ब्रह्मचारी के आग्रह पर मुमुक्ष भवन में आकर रहने लगे और आज तक मुमुक्ष भवन के २१ नम्बर कमरे में निवास कर रहे हैं । मुमुक्ष भवन अस्सी वाराणसी में स्थित है ।

मेरे गुरुदेव श्री देवान्द्रश्रम जी महाराज अपने ब्रह्मचारी एवं सन्यास काल में अनेक छोटे-बड़े ज्ञान यज्ञ एवं हवन यज्ञ कराये । सर्वप्रथम स्वामी जी अपने ग्राम मटीहा में श्रीमद्भागवत यज्ञ का अनुष्ठान किया और समस्त ग्रामीणों को भागवत की कथा सुनाई । श्री रूद्रस्वरूप इनके समवयस्क ब्रह्मचारी थे । स्वामी जी इनके एवं श्री हरिहराश्रम जी महाराज के सहयोग से जमुना के किनारे करुआ जिला बाँदा में एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया । मटीहा ग्राम से चार किलोमीटर उत्तर फतेपुर रोड़ पर पुरवुजुर्ग नामक एक ग्राम है । उस ग्राम में जमुना पार बाँदा जिले के रामदास रहते थे । उस गाँव में स्वामी जी ने महारूद्र यज्ञ का आयोजन किया । इस यज्ञ में बड़े-बड़े महात्मा एवं सन्यासी सम्मिलित हुए । वृन्दावन से श्री गिरिराज महाराज को बुलाया गया था । धुन्ना के बाबा जी, अश्विनी आश्रम से परसुराम स्वामी एवं काशी से भी हरिहरानन्द (करपात्रीजी) महाराज भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए । इसी यज्ञ में स्वामी जी ने अपने भाई श्री रामराज त्रिपाठी को गृहस्थाश्रम की दीक्षा दिलवाये । यज्ञ अच्छे ढंग से सम्पन्न हुआ । आये हुए सन्तों एवं महात्माओं को उचित दक्षिणा के साथ सम्मानित किया गया । उन दिनों देहातों में आवागमन के साधन कम थे । स्वामी जी के बड़े भाई श्री रामराज ने श्री परसुराम स्वामी को अपने निजी घोड़े से गन्तव्य स्थान तक पहुँचाया।

उन्नाव जिला के बीघापुर स्टेशन से उत्तर-पूर्व की ओर तीन-चार किलोमीटर की दूरी पर बेहढा-भवानी नामक एक स्थान है । उसी स्थान पर पूज्य स्वामी जी ने आचार्य पंडित रामाविलास के आचार्यत्व में गायत्री यज्ञ का अनुष्ठान किया । इस यज्ञ में बड़े-बड़े महात्मा, कथावाचक एवं कलाकार सम्मिलित हुए । आते-जाते पूज्य स्वामी जी का सम्बन्ध सीखड़ ग्राम से हो गया था । वहाँ के अधिकांश लोगों से इनका परिचय हो चुका था । पूज्य स्वामी जी ने सीखड़ ग्राम के प्रसिद्ध कथावाचक श्री इन्द्रदत्त शुक्ल को भी इस यज्ञ में आमंत्रित किया था । शुक्ल जी स्वामी जी के आग्रह पर उनके

यज्ञ में सम्मिलित हुये । उन्होंने अपनी ओजपूर्ण कथा से वहाँ के लोगों को काफी प्रभावित किया । शुक्ल जी की वाणी बड़ी ओजस्वी है । वे अपनी ओजस्वी देश-प्रेम की कथाओं से मलेट्री के जवानों को कथा सुनाया करते थे । इसके अतिरिक्त सीखड़ के नवजवान योगिराज ताराशंकर मिश्र को भी गुरुजी ने आमंत्रित किया था । योगीराज अपने योग बल से अपने सीने पर ट्रैक्टर पास कराते थे, दाँतों के बल से भारी वस्तुयें उठाते थे एवं हाथी की पूँछ पकड़ उसे आगे बढ़ने से रोकते थे । उनका प्रदर्शन भी यज्ञ में हुआ था । स्वामी जी इस गायत्री यज्ञ में गाँव एवं क्षेत्र के लोगों का तथा सिद्धेश्वर महादेव के दण्डी स्वामी का पूर्ण सहयोग था । इस यज्ञ का क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा ।

सन् २००१ ई. के जनवरी महीने में इक्कीसवीं सदी का प्रथम कुम्भ मेला लगा । इलाहाबाद का कुम्भ मेला भारतवर्ष ही नहीं विश्व में अपना स्थान रखता है । प्रयाग के अतिरिक्त अन्य तीन कुम्भ मेलों का आयोजन अपने देश में होता है । इन कुम्भों की परम्परा पुराणों से सम्बन्धित है । भारतवर्ष के उत्तराखण्ड में हरिद्वार, महाराष्ट्र में नासिक एवं मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर में भी कुम्भ मेलों का आयोजन प्रत्येक बारह वर्षों के बाद होता है । प्रयाग का कुम्भ मेला गंगा-जमुना-सरस्वती के संगम पर गंगा जमुना की रेती में लगता है । सन्त तुलसीदास ने तीर्थराज प्रयाग का वर्णन करते हुए लिखा है—

माघ मकर गति जब रबि होई । तीरथ पतिहि आव सब कोई ।

देव दनुज किन्नर नर श्रेनी । सादर मंजहि सकल त्रिवेनी ।।

माघ के महीने में तीर्थराज प्रयाग में गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं सन्यासी सभी समुदाय के लोग इस माघ मेले में आते हैं और बड़ी आस्था एवं श्रद्धा के साथ गंगा स्नान करते हैं । इसी मेले में सन् २००१ में यज्ञ की योजना बनी और श्री स्वामी जी ने फाल्गुन के महीने में मीरजापुर जिलान्तरगत पँचराव ग्राम में महारुद्र यज्ञ का आयोजन किया । नौ दिनों तक गाँव एक यज्ञ स्थल बना हुआ था । पूरा धार्मिक वातावरण सर्वत्र व्याप्त था । विशाल मंडप में ग्यारह पंडितों के माध्यम से रुद्राष्टध्ययी का पाठ एवं हवन प्रतिदिन होता रहा । यज्ञ स्थल से कुछ दूरी पर विशाल पाण्डाल में शिवपुराण की कथा भी होती रही । स्वामी जी के प्रयास से काशी श्री सुमेर

पीठ के शंकराचार्य श्री नरेन्द्रानन्द तीर्थ भी यज्ञ में पधारे और तीन दिन यज्ञ स्थल में रहते हुए क्षेत्रीय जनता को अपने धार्मिक प्रवचनों के माध्यम से सदुपदेश दिये थे। श्री नरेन्दानन्द जी अपने ब्रह्मचर्य जीवन से सीधे सन्यास आश्रम में गये हैं। हैं तो वे अभी एक नवजवान लेकिन अपनी साधना और विद्वता के बल से भारत के शंकराचार्यों में उनकी विशिष्ट गणना है। वे वेद, शास्त्र पुराण के साथ-साथ आधुनिक शास्त्रों के ज्ञाता एवं कुशल वक्ता भी हैं। स्वामी जी का सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व है। इनके यज्ञ में जाने से यज्ञ की महत्ता बढ़ गयी। इनके अतिरिक्त अनेक सन्यासी एवं ब्रह्मचारी भी यज्ञ में सम्मिलित हुये थे।

सन् २००४ के चैत्र महीने में स्वामी जी ने अपनी जन्मभूमि मटीहा ग्राम में शतचण्डी यज्ञ का आयोजन किया। प्रत्येक वर्ष में चैत्र और अश्विन के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर नवमी तिथि तक बड़ा पवित्र काल माना जाता है। देवी के पूजन एवं दुर्गाशप्तसती के पाठ का आयोजन इन दिनों में होता है। कौशाम्बी जिला के हिनौता ग्राम निवासी रामअभिलाष के आचार्यत्व में इस यज्ञ का आयोजन हुआ। काशी से आये विद्वान पंडितगण इस यज्ञ में भाग लिये। काशी से आये हुए ग्यारह आचार्यों ने दुर्गासप्तशती का सुमधुर कण्ठ से पाठ किया। पास में ही बने सुन्दर पाण्डाल में तीन बजे से छः बजे सायंकाल तक श्री रामचरितमानस की कथा एवं गुणगान चलता रहा। वृन्दावन से पधारे स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने अपने मधुर कण्ठ से भगवान की कथा सुनाये। कानपुर आश्विनी घाट से सूर्यबोधाश्रम जी महाराज, ब्रह्मचारी विनोदानन्द जी महाराज भी यज्ञ में पधारे। अन्तिम दिनों में काशी सुमेरपीठ के स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज एवं काशी सुमेरापीठाधीश्वर श्री अनन्त विभूषित शंकराचाय नरेन्दानन्द सरस्वती भी यज्ञ स्थल पर उपस्थित हो अपने आध्यात्मिक प्रवचनों से स्थानीय जनता को लाभान्वित किया। इसके अतिरिक्त काशी मुमुक्ष भवन के ग्यारह सन्यासी एवं अन्य स्थानीय सन्यासियों ने यज्ञ में सम्मिलित होकर यज्ञ को सफल बनाया। दिन में दोपहर एवं सायंकाल दोनों समय यज्ञ में आये हुए ब्रह्मचारी, गृहस्थ सन्यासी, महात्मा एवं दरिद्रनारायण का भण्डारा चलता रहा। स्थानीय लोगों का पूर्ण सहयोग स्वामी जी को प्राप्त था।

यज्ञ के दसवें दिन पूरा वातावरण यज्ञ के हवन धूम्र से परिपूर्ण हो गया। सारा वातावरण एवं क्षेत्र यज्ञ की ध्वनि एवं धूम्र से परिपूर्ण रहा। उसी

दिन एक विशाल भण्डारा का आयोजन हुआ । दूर-दूर से आये हुए लोगों ने यज्ञ का प्रसाद ग्रहण किया । चारों तरफ मेरे गुरुदेव श्री देवेन्द्राश्रम जी महाराज की जय-जयकार होने लगी । सारा क्षेत्र यज्ञ भगवान की भक्ति से अविभूत हो गया । क्षेत्र में वैसा यज्ञ अब तक हुआ ही नहीं था । श्री स्वामी जी ने अपनी जन्मभूमि में यज्ञ का आयोजन कर अपने ग्राम को धन्य कर दिया । सन्तों, महात्माओं, विद्वानों के अतिरिक्त स्वामी जी के गृहस्थ शिष्यों ने भी उपस्थित होकर यज्ञ का प्रसाद ग्रहण किया । मीरजापुर, वाराणसी, इलाहाबाद, कौशाम्बी, फतेपुर, बाँदा, प्रतापगढ़, कानपुर आदि आदि जिलों से स्वामी जी के भक्तगण यज्ञ में उपस्थित हुए और अपने श्री गुरुदेव की जन्मभूमि एवं सन्तों के दर्शन से कृतार्थ हुए । अगले ही दिन प्रातःकाल स्वामी जी ने सन्तों, सन्यासियों, आचार्यों को श्रद्धा और उचित दक्षिणा के साथ विदा किया । बिना दक्षिणा के यज्ञ की पूर्णाहुति नहीं होती है । अतः स्वामी जी का यह यज्ञ पूर्ण रूप से सफल रहा ।

श्री स्वामी जी महाराज ने अपने ग्राम में दो विद्यालयों की स्थापना भी की है । एक विद्यालय सरकार के संरक्षण में स्थानीय लोगों को शिक्षा दे रहा है । दूसरे विद्यालय का वहाँ के क्षेत्रीय लोगों ने श्री स्वामी देवेन्द्राश्रम माध्यमिक विद्यालय नामकरण किया । इस विद्यालय में विशेष रूप से पिछड़े एवं दलित वर्ग के बच्चे साक्षर हो रहे हैं । कक्षा आठ तक विद्यालय को मान्यता मिल चुकी है । भविष्य में कक्षा दस तक मान्यता प्राप्त हो जायेगी । विद्यालय का संचालन स्वामी जी के भतीजे डाक्टर दिवाकर के संरक्षण में चल रहा है । मटीहा ग्राम के पूरब तरफ एक सुन्दर कच्चा तालाब है । उसी तालाब के किनारे श्री स्वामी जी ने एक सुन्दर शिव-मन्दिर का भी निर्माण करवाया है । गत दो तीन वर्षों से शिवरात्रि के दिन एक मेला का भी आयोजन स्वामी जी ने किया है । क्षेत्रीय जनता उस दिन एकत्रित होकर शिव के अर्चन-पूजन कर मेले का भी आनन्द लेती है । श्री स्वामी जी महाराज अपने श्री गुरु के ब्रह्मलीन होने के बाद माघ-मेला प्रयाग में श्री दक्षिणामूर्ति मठ के नाम से एक शिविर चलाते हैं । यह शिविर प्रतिवर्ष माघ के महीने में सन्यासी बाड़ा में गंगा जी के किनारे लगता है जिसमें स्वामी जी के शिष्यगण कल्पवास वास करते हैं । प्रायः महीने भर साधु-सन्तों का भण्डारा चलता रहता है ।

इस समय श्री स्वामी जी महाराज काशी के मुमुक्ष भवन में रहते हैं। अस्सी वर्ष की आयु में भी समय-समय पर गंगाजी के किनारे भ्रमण करते हुए सदगृहस्थों को अपने सत्संग से लाभान्वित करते रहते हैं। श्री स्वामी जी के सभी शिष्यों, भक्तों की भगवान के चरणों में प्रार्थना है कि मेरे श्री गुरुदेव को दीर्घायु प्रदान करे जिससे हम सभी लोग उनके दर्शन एवं सदोपदेश से लाभान्वित होते रहें।

।। श्री राम जय राम जय जय राम ।।

'प्रवचन'

श्री गणेशाय नमः श्री रामचन्द्राय नमः

श्री राम राम रघुनन्दन राम राम ।
श्री राम राम भरताग्रज राम राम ।।
श्री राम राम रणकर्कश राम राम ।
श्री राम राम शरणं भव राम राम ।।
श्री रामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि ।
श्री रामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।।
श्री रामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि ।
श्री रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्य ।।

मनोजवं मारुत तुल्य वेगम् ।
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यम् ।
श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।

वन्दौ तुलसी के चरण जिन्ह कीन्हों बड़ काज ।
जग समुद्र बूड़त लख्यो प्रगटेउ सप्त जहाज ।।
श्री गुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरणौ रघुवर बिमल यस जो दायक फल चारि ।।

सियावर रामचन्द्र की जय ।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक, पर ब्रह्म परमात्मा भगवान श्री राम की महती अनुकम्पा से यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि आप सभी भक्तगणों के समक्ष श्री राम के सुयस का वर्णन करूँ । यह मेरा परम सौभाग्य है ।

श्री रामचरितमानस के बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही एक चौपाई आती है ।

गई बहोर गरीब नेवाज़् । सरल सबल साहिब रघुराज़् ।।

वे परम प्रभु श्री रघुराथ जी गयी हुई वस्तु को फिर प्राप्त कराने वाले, गरीब नेवाज, दीनबन्धु, सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुध बरनहि हरि जस अस जानी । करहि पुनीत सुफल निज बानी । बुद्धिमान लोग उन श्री हरि का यश वर्णन करके अपनी बाणी को पवित्र और उत्तम फल मोक्ष और भगवत्प्रेम देने वाली बनाते हैं । मोक्ष ही नहीं भगवान के यश का वर्णन करने वाले को चारो फल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सकल साहिब रघुराजू ।।

रामचरितमानस की आठ शब्दों वाली यह चौपाई अपने में मानस के सातों काण्डों और भगवान के चरित्र और यश को अपने में समेटे हुए है ।

आइये कुछ विस्तार के साथ इस चौपाई पर विचार करें । गई बहोर-

नारि अहिल्या जनक प्रण रघुवंशिन को वंश ।
गई बहोर सो बाल में सूरवंश अवतंश ।।

गरीब नेवाजू -

मग में पथिक किरात गन कोल भिल्लगुहराज
अवध काण्ड में देखिये राम गरीब नेवाज ।

सरल-

देखि लेहु वन काण्ड में अधिक सरलता कीन्ह ।
सबरी गीध सुसेवकनि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।

सबल-

किष्किन्धा मे सबलता देखि लेहु तत्काल ।
मारेउ एकै बान से सप्त ताल अरु बाल ।।

सहिब-

सुन्दर लंका काण्ड में प्रभु साहिबी देखात ।
दीन्ही राज विभीषनहि करि रावन को घात ।।

रघुराज-

सीता सहित समेत प्रभु सोहत सहित समाज ।

देखौ उत्तर काण्ड में आय बने रघुराज ।।

सियावर रामचन्द की जय ।

श्री राम जय राम जय जय राम । श्री राम जय राम जय जय राम।

नारि अहिल्या जनक प्रन रघुवंशिन को बंश ।

गई बहोर सो बाल में सूर वंश अवतंश ।।

अवधपुरी में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए । राजा दशरथ रघु एवं अज राजा की परम्परा में चक्रवर्ती सम्राट थे । अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त की । उनके पास अतुल वैभव था । उनके धन को देखकर धनद धन के देवता कुबेर भी लज्जित होते थे । राजा दशरथ का नाम वेदों में विख्यात है । वे धर्म धुरन्धर, गुणों के भण्डार और ज्ञानी थे । उनके हृदय में सारग धनुष धारण करने वाले भगवान की भक्ति थी और उनकी बुद्धि भी सदैव उन्हीं में लगी रहती थी । राजा दशरथ का व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय था । कौशिल्या, कैकेयी और सुमित्रा उनकी प्रिय भार्या थी । वे सभी पवित्र आचरण वाली, विनीत एवं पति के अनुकूल चलने वाली थीं । साथ ही साथ श्रीहरि के चरणों में उनका दृढ़ प्रेम था ।

कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।

पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल विनीत ।।

ऐसे सर्व सम्पन्न पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ के मन में एक बार बड़ी ग्लानि हुयी कि मेरे पुत्र नहीं ।

एक बार भूपति मन माहीं । मै गलानि मोरे सुत नाहीं ।।

आइये इस चौपाई पर कुछ विचार किया जाय कि राजा दशरथ को एक बार ग्लानि क्यों हुयी । बार-बार क्यों नहीं हुयी ? युवापन में ग्लानि क्यों नहीं हुयी वृद्धावस्था में ग्लानि क्यों हुयी ?

राजा दशरथ की प्रथम पत्नी कौशिल्या थी । बहुत दिनों तक कौशिल्या के पुत्र नहीं हुआ । फिर दूसरी पत्नी सुमित्रा थी । उनसे भी पुत्र

की प्राप्ति नहीं हुयी । तीसरी पत्नी के रूप में महारानी कैकेयी आई और उनसे भी पुत्र की प्राप्ति नहीं हुयी । इस तरह प्रतीक्षा करते करते वृद्धावस्था आ गयी । किन्तु कभी भी दशरथ के मन में पुत्र के लिए ग्लानि नहीं हुयी।

महाराज दशरथ पराक्रमी सम्राट थे । बाण विद्या में इतने निपुण थे कि उन्हें शब्दभेदी बाण का भी ज्ञान था । सुरराज इन्द्र भी जब कभी युद्ध में पराजित होते थे तो वे महाराज दशरथ की युद्ध में सहायता लेते थे और संग्राम में विजयी होते थे । सुरराज इन्द्र महाराज दशरथ का बड़ा सम्मान करते थे और स्वर्ग में जाने पर अपना आधा आसन उन्हें बैठने के लिए देते थे ।

आगे होइ जो सुरपति लेई । अरध सिंहासन आसन देई ।।

ऐसा प्राय: होता रहता था । महाराज इन्द्र दरबार में जाते थे, इन्द्र उनका सम्मान करते थे और अपने साथ आधे सिंहासन पर बैठाते थे । बहिरंग दृष्टि से उनका सम्मान करते थे । किन्तु राजा दशरथ के लौटने के पश्चात् इन्द्र अपना सिंहासन धुलवाकर शुद्ध करते थे । इन्द्र का विश्वास था कि नि:सन्तान के स्पर्श से सिंहासन अपवित्र हो जाता है । इसलिए उनके आने के पश्चात् वे ऐसा करते थे । एक बार की बात है जब राजा इन्द्र अपना सिंहासन जल से धोकर पवित्र करा रहे थे उसी समय देवर्षि नारद घूमते फिरते इन्द्र दरबार में पहुँच गए । नारद मुनि ने इन्द्र से सिंहासन धुलवाने का कारण पूछा । इन्द्र से नारद मुनि को सारा वृतान्त मालूम हो गया । नारद जी तुरन्त घूमते-टहलते नारायण ! नारायण ! भजते हुए अयोध्या आ गए और इन्द्रपुरी का सारा समाचार अपनी भाषा में महाराज दशरथ को सूचित किया ।

महाराज दशरथ इतने सम्पन्न, सुखी, पराक्रमी सम्राट थे कि उन्हें नि:सन्तान होने की इतनी चिन्ता नहीं थी । लेकिन जब नारद के द्वारा नि:सन्तान होने पर इतना अपमान का सामना करना पड़ा तो उनके हृदय में ग्लानि हुयी । अपमान होने पर ग्लानि का होना स्वाभाविक है । स्वभावत: व्यक्ति को पुत्र न होने पर दु:ख होता ही है लेकिन ग्लानि नहीं होती । इस तरह राजा दशरथ के मन में एक बार बड़ी ग्लानि हुयी कि मेरे पुत्र नहीं है । राजा तुरन्त ही गुरु के घर गये और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की और अपना सारा सुख-दु:ख गुरु को सुनाया । गुरु वशिष्ठ ने उन्हें अनेक

प्रकार से समझाया और धैर्य बँधाया ।

धरह धीर होइहहिं सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भय हारी ।
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्र काम सुभ जग्य करावा ।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिनि चरु कर लीन्हें ।।
जो बसिष्ठ कछु हृदय विचारा । सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा ।
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ।।
तब अहस्य भस पावक, सकल सभहि समुझाइ ।
परमानन्द मगन नृप हरष न हृदय समाइ ।।

गुरु वशिष्ठ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया । अग्निदेव हाथ में चरु लेकर प्रगट हुये । अग्निदेव ने राजा दशरथ से कहा- "हे राजन ! तुम जाकर यह चरु जिसको जैसा उचित हो वैसा भाग बनाकर बाँट दो । इसके पश्चात् अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अदृश्य हो गये । राजा परमानन्द में मगन हो गये उनके हृदय में हर्ष समाता न था । सारी ग्लानि आनन्द और प्रसन्नता में परिवर्तित हो गयी ।

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ।।

अग्निदेव ने महाराजश्री को हवि देते हुये स्पष्ट शब्दों में यह आदेश दिया कि यह हवि ले जाकर बाँट दीजिए । इतना ही नहीं वितरण की प्रक्रिया के लिए उनका मापदण्ड था- यह वितरण योग्यता के अनुरूप होना चाहिए । जथा जोग जेहि भाग बनाई का तात्पर्य यही है । आगे चलकर जब पायस का वितरण किया गया तब यह स्पष्ट हो गया कि वितरण करते हुये महाराज दशरथ ने अग्निदेव की आज्ञा का सही अर्थों में पालन किया । वितरण की प्रक्रिया में न्याय भावना को ही प्रधानता दी गयी । महाराजश्री ने महारानी कौशिल्या को आधा भाग दे दिया ।

अर्ध भाग कौसल्याहि दीन्हा । उभय भाग आधेकर कीन्हा ।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ । रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ।।

इसके पश्चात् बचे हुए पायस का आधा भाग कैकेई को दिया । सुमित्रा अम्बा को कैकेई के बराबर ही मात्र दिया किन्तु उन्हें देने की प्रक्रिया अनोखी

थी। कैकेई के देने बाद जो चरु शेष था उसके दो भाग किये गये। इन दोनों भागों को कौसल्या और कैकेई के हाथों में रखकर महाराज ने उनसे निवेदन किया कि ये दोनों भाग आप लोग सुमित्रा जी को प्रदान करें।

मानस के प्रसङ्गानुसार कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा क्रमशः ज्ञान, क्रिया एवं भावना शक्ति की प्रतीक हैं।

ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या सुमित्रोपासनात्मिका।

क्रियाशक्तिश्च कैकेयी वेदो दशरथो नृपः ।।

वितरण की सीधी प्रक्रिया यह हो सकती थी कि तीनों रानियों को पायस समान रूप में वितरित कर दिया जाता। वितरण की यह प्रक्रिया बहिरङ्ग दृष्टि से समता के सिद्धान्त के रूप में देखी जाती, किन्तु इसके अतिरिक्त बटवारे की एक जटिल प्रक्रिया का आश्रय लिया गया। कौसल्या अम्बा को चारु का आधा भाग देना दो दृष्टियों से आवश्यक था। क्रिया और उपासना की तुलना में ज्ञान को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। ज्ञान के अभाव में की जाने वाली उपासना और क्रिया दोनों ही अपूर्ण सिद्ध होगी। दोनों को अपनी समग्रता के लिए ज्ञान का आश्रंय लेना होगा। दूसरे ज्ञान के प्रति किया जाने वाला पक्षपात संघर्ष की सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि संघर्ष अभिमान और भेद के कारण होता है। ज्ञान में अभिमान और भेद दोनों का अभाव है।

ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माही ।।

इसके पश्चात् महाराज दशरथ ने रानी कौसल्या के बाद कैकेयी को सर्वाधिक सम्मान देकर उनके अहं को तुष्ट करने का प्रयास किया। क्रिया में स्वभावतः सम्मान की भूख होती है। उपासना में सम्मान की भूख हो ही नहीं सकती। उपासना तो निरभिमानता एवं समर्पण का दर्शन है। अतः क्रिया शक्ति के सात्विक सन्तुष्टि के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें सुमित्रा अम्बा की तुलना में अधिक सम्मान दिया जाय। सुमित्रा अम्बा को रानी कैकेयी के बराबर ही भाग दिया गया किन्तु उन्हें देने की प्रक्रिया बड़ी अनोखी थी। कैकेयी के देने के बाद जो पायस शेष बचा उसके दो भाग किये गए। इन दोनों भागों को क्रमशः कौसल्या और कैकेयी के हाथों में रखकर महाराज ने उनसे कहा कि आप लोग ये दोनों भाग सुमित्रा जी को प्रदान करें।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी । भईं हृदयँ हरषित सुखभारी ।।

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं । वे बड़ी प्रसन्न हुईं । उन्हें बड़ा सुख मिला । जिस दिन से श्रीहरि गर्भ में आये सब लोकों में सुख सम्पत्ति छा गयी । इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जब प्रभु को प्रगट होना था ।

जोग लगन ग्रह वार तिथि सकल भए अनुकूल ।
चर अरु अचर हर्षजुल राम जनम सुख मूल ।।

जब श्री राम जन्म का अवसर आया तो जोग लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गये, जड़ और चेतन सब हर्ष से भर गये । सर्वत्र आनन्द ही आनन्द हो गया । श्रीराम चतुर्भुज रूप में माँ कौसल्या के समक्ष प्रगट हो गये । मुनि-मन-हारी इस अद्भुत रूप को देखकर माँ प्रसन्नता से भर गयी । माँ ने दोनों हाथ जोड़ कर प्रभु की स्तुति की ।

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनंता ।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ।।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेदक है ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई भातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रमल है ।।

जब माता को ज्ञान उत्पन्न हुआ तो प्रभु मुस्कराये । उन्होंने सुन्दर कथा कहकर माता को समझाया जिससे उन्हें पुत्र का प्रेम प्राप्त हो । माता की बुद्धि बदल गयी । उन्होंने प्रभु से यह रूप त्याग कर शिशु लीला करने हेतु निवेदन किया । यह वचन सुनकर देवताओं के स्वामी भगवान ने बालक होकर रोना शुरू कर दिया ।

बच्चे के रोने की प्रिय ध्वनि सुनकर सब रानियाँ दौड़कर चली आयी । दासियाँ प्रसन्न होकर जहाँ तहाँ दौड़ने लगी । सारे पुरवासी आनन्द में मग्न हो गए । राजा दशरथ पुत्र का जन्म कानों में सुनकर मानो ब्रह्मानन्द में समा

गये। शरीर पुलकायमान हो गया। मन में अतिशय प्रेम के कारण शिथिल शरीर से उठना चाहते हैं। राजा का मन परम आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उन्होंने बाजा वालों को बुलाकर बाजा बजाने के लिए कहा। श्री भगवान का जन्म होते ही अयोध्यां में आनन्द की वर्षा होने लगी उत्सव की धूम मच गयी। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। सभी लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये।

गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमाचन्द।

हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर वृन्द ।।

कैकेयी और सुमित्रा इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया।

वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकहि सारद अहिराजा ।।

राजभवन में अति कोमल वाणी से वेद ध्वनि हो रही है, सारा राज परिवार सुख और आनन्द में विभोर है। महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गये, फिर रात किस तरह होती। सूर्यदेव भगवान श्रीराम का गुणगान करते हुये चले गए। यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि, नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने अपने घर चले गए। इस अवसर पर जो जिस प्रकार आया, जिसके मन को जो अच्छा लगा, राजा दशरथ ने उसे वही दिया। हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौए, हीरे और भाँति-भाँति वस्त्र दिये और सबके मन को सन्तुष्ट किया।

शंकर जी ने पार्वती से कहा, हे गिरजा तुम्हारी बुद्धि श्रीराम जी के चरणों में बहुत दृढ़ है, इसलिए मैं और भी अपनी एक चोरी की बात कहता हूँ सुनो काकभुशुण्ड और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे परन्तु मनुष्य रूप में होने के कारण हमें कोई जान न सका।

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरजा अति दृढ़ मति तोरी ।।

काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रुप जानइ नहिं कोऊ ।।

परमानन्द प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ।।

भगवान शंकर ने कौन सी चोरी की। शंकर जी भगवान के बाल रूप दर्शन हेतु पार्वती जी को नही ले गये। एक बार पार्वती जी सती रूप में भगवान को सीताजी खोज करते हुए देखकर भ्रमित हो गयी थी जिसका

परिणाम बड़ा दुखदायी हुआ । इसलिए पार्वती जी को साथ नहीं ले गये । अथवा उनके भगवान के बाल रूप दर्शन की पोल न खुल जाय । इसलिए पार्वती को साथ नहीं ले गये । जब पार्वती जी की बुद्धि भगवान चरणों में दृढ़ हो गयी तब उन्होंने पार्वती जी से अपनी चोरी कही ।

शंकर जी ने मदाड़ी का रूप बनाया और काकभुसुन्ड को अपना चेला बनाया । मदाड़ी के साथ चेला के रूप में एक बालक रहता है जो मदाड़ी के सभी खेल सम्पन्न होने में मदद करता है । भगवान शंकर अपने चेले के साथ डमरू बजाते हुए अयोध्या की गलियों में घूमते फिरते राजमहल के सामने पहुँचे और डमरु बजाते हुये महल के सामने आसन जमा कर बैठ गये । शंकर ने ऐसा डमरू बजाया कि उसकी आवाज महल के अन्दर पहुँच गयी । शिशु राम डमरू की आवाज सुनते ही चिहुँक गये, मातायें घबड़ा गयी । द्वारपाल दौड़े हुये आये और यह कहते हुए- भागो यहाँ से बालक की नींद चौपट हो रही है । मदाड़ी का झोला फेंककर भगा दिये । शंकर जी को भगवान के बाल रूप का दर्शन न हो सका । किन्तु वे निराश नहीं हुए । दूसरी बार भगवान शंकर एक ज्योतिषी का रूप बनाकर अपने चेले काकभुसुन्ड के साथ पुनः महल के सामने पहुँचे और लोगों का हाथ देखकर भविष्य बताना शुरू किया ।

तुलसीदास जी विनयपत्रिका में इस प्रसंग पर बड़ा ही सुन्दर पद लिखे हैं ।

अवध आगमी एक आयी ।
करतल देखि कहै सब सुख दुख बहुतन परिचय पायो ।।

राजमहल से दासियाँ बाहर आई । उन्होंने एक ज्योतिषी को लोगों का हाथ देखकर भविष्य बताने की बात महल में जाकर माताओं से कही । माताओं ने दासियों से ज्योतिषी को बुलाकर महल में ले आने का आदेश दिया । दासियाँ बाहर आईं और ज्योतिषी से कहा-

भाग्य खुल गये विप्रवर चलो हमारे साथ ।
राजमहल में देखिए रामलला को हाथ ।।

ज्योतिषी महाराज दासियों के साथ राजमहल में जाने लगे, उनका शिष्य भी गुरुजी के साथ महल में प्रवेश करने लगा, किन्तु उसको रोक दिया

गया । इस पर ज्योतिषी महाराज ने कहा,

काम बने नहि युगल बिनु करै न आपै रोष ।

रेखा देखत शिष्य यह मैं बरनत गुन दोष ।।

गुरु शिष्य दोनों को महल में जाने को आदेश मिला और महाराज शिष्य के साथ महल में प्रवेश किये । वहाँ पर उनका समुचित आदर सत्कार किया गया ।

माँ कौसल्या रामलला को लेकर ज्योतिषी के समक्ष उपस्थित हुयीं । चेला भगवान का हाथ अपने हाथ में लेकर देखने लगा और ज्योतिषी महाराज ने बालक के भविष्य को माताओं के सामने प्रगट किया । भगवान शंकर को परब्रह्म परमात्मा का बाल रूप में विधिवत दर्शन किया ।

जन्म प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय स्वयवर गायो ।

राम लखन रिपुदमन भरत को सब सुजस सुनायो ।।

इस तरह बड़े आदर सत्कार के साथ ज्योतिषी महाराज की विदाई हुयी । पश्चात् भगवान शंकर महल से बाहर चले गये ।

भगवान राम का जन्मोत्सव महीनों तक मनाया गया । अयोध्या नगरी ध्वज, पताका और तोरण से सजायी गयी । आकाश से फूलों की वर्षा हो रही थी । सभी लोग ब्रह्मानन्द में मग्न थे ।

वृन्द वृंद मिलि चली लोगाई । सहज सिंगार किए उठिधाई ।

कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत बैठहि भय दुआरा ।।

जिस समय अयोध्या की स्त्रियाँ सोने का कलश लेकर और थालों में मंगल द्रव्य भरकर गाती हुई राजद्वार में प्रवेश करती थी, उसी समय प्रेमलता नामक एक साधरण भोली भाली रामभक्त महिला ने रामलला के दर्शन हेतु राजमहल में प्रवेश किया । वह पलंग पर फूल की पंखुड़ी डालकर भगवान के दर्शन से तृप्त हो गयी । कौसल्या के आँगन में बधाइयों का ताँता लगा हुआ ता ।

बधैया बाजी आगने में ।

चन्द्रमुखी मृगनयनी अवध की घुघुरुवा बादे पागने में ।।

सारी अली यह कौतक देखे रैन सब बीती जागने में ।

प्रेमलता भगवान के सौन्दर्य दर्शन के बाद सब सुध-बुध खोकर एक मात्र भगवान में लीन हो गयी । वह भगवान के प्रेम में इतनी तल्लीन हो गयी कि सुनै न काहू की कुछ कहै न अपनी बात । रामलला की छवि में छकी रहै दिन रात । इस तरह प्रेमलता सामने बाग में बैठकर हाथ में बीना लेकर भगवान के गुणगान में लीन हो गयी ।

हिये में झूले मेरे राम लला, अवधेश लला ।

इस तरह दो तीन दिन बीत गये । भक्तवत्सल भगवान प्रेमलता की अनन्य प्रेमाभक्ति से द्रवित हो गये और पलंग पर सोये सोये चिहुँक गये, रोने लगे ।

बिकल मातु दासी सकल भयो भूप हिय खेद ।

जंत्र मंत्र करि गुरु थके, तब समझै कुछ भेद ।।

भगवान ने शिशु लीला की । अनेक उपाय करने के पश्चात् भी उनका रोना बन्द नहीं हुआ । गुरु बशिष्ठ आये । अनेक प्रकार के जंत्र मंत्र का सहारा लिया गया किन्तु सब ब्यर्थ । अन्त में गुरु बसिष्ट को कुछ भेद समझ में आया । उन्होंने राजा को शिशु को गोद में लेकर बाहर जाने का परामर्श दिया । राजा भगवान को गोद में लेकर बाहर आये जहाँ प्रेमलता भगवान का गुणगान कर रही थी । भगवान प्रेमलता के गोद में जाने के लिए उतावले थे । प्रेमलता ने बढ़कर भगवान को अपनी गोद में ले लिया । गोद में जाते ही रामलला शान्त हो गये और हँसकर खेलने लगे । लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । राजा दशरथ ने प्रेमलता से भगवान को खेलाने का आग्रह किया । प्रेमलता का रामलला को गोद में लिये हुये महल में प्रवेश हुआ । इस तरह प्रेमलता माँ कौसल्या के साथ शिशु के लालन पालन में तल्लीन हो गयी ।

एहि विधि सिसु विनोद प्रभु कीन्हा । सकल नगर बासिन सुख दीन्हा ।

लै उछंग कबहुक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै ।।

प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान ।

सुत सनेह बस माता बाल चरित कर गान ।।

प्रेम में मगन कौसल्या जी रात और दिन का बीतना नहीं जानती थी । पुत्र के स्नेहवश माता उनके बाल चरित्रों का गान किया करती थी । इस

प्रकार परब्रह्म परमात्मा ने रघुवंश में जन्म लेकर दशरथ के वंश को उजागर किया। माता-पिता उनके बाल चरित्र से अति आनन्दित हुए।

भोजन करत बुलावत राजग। नहि आवत तजि बालसभा ।।

जब राम धूर धूसरित खेलकर आते थे तो राजा उन्हें अपनी गोद में बैठाकर भोजन कराते थे।

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।

भाजि चले किलकत मुख दादी ओदन लपटाइ ।।

श्रीरामचन्द्र जी की सरल और सुन्दर बाल-लीलाओं का सरस्वती शेषजी, शिवजी और वेदों ने गान किया है।

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।

भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ।।

चारों भाई कुमारावस्था को प्राप्त हुए। माता पिता ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। वे गुरु गृह पढ़ने के लिए गये। थोड़े ही समय में सारी विद्याओं को प्राप्त कर लिया। उसी समय

विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहि बिपिन शुभ आश्रम जानी ।।

महामुनि अपने आश्रम में जप यज्ञ और यज्ञ करते थे परन्तु मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे। भगवान राम ने ताड़का, सुबाहु का बध किया और विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। श्री रघुनाथ जी वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणों पर दया की। भक्ति के कारण ब्राह्मणों ने उनसे पुराणों की बहुत सी कथायें कही। यद्यपि प्रभु सब जानते थे फिर भी अपने चरित्र और लीलाओं से उन्होंने उन्हें आनन्दित किया।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई ।।

धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा ।।

जनकपुर की यात्रा के समय मार्ग में एक आश्रम दिखायी पड़ा। वहाँ कोई भी पशु-पक्षी जीव जन्तु नहीं था। पत्थर की एक शिला देखकर प्रभु ने पूछा। तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही।

गौतम नारि श्रापबश उपल देह धरि धीर।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर ।।

यहाँ पर गुरु ने चरण रज की बात क्यों कही ? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम एक ऋषि पत्नी को पाँव से नहीं छुना चाहते थे । वे संकोच में पड़ गये, किन्तु कुछ विचार के बाद चरण रज दिया ।

दासी पति वंचक सदा सब निन्दहि अनुमान ।

रामौ परस्यो भाव ते गौतम तिय गति जान ।।

इसलिए भगवान ने चरण स्पर्श किया । यद्यपि चरण स्पर्श से उनके हृदय में खेद और अप्रसन्नता थी ।

भगवान के पवित्र और शोक को नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही वह तपोमूर्ति अहल्या प्रगट हो गयी । भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथ जी को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी । अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गयी । उसका शरीर पुलकित हो उठा, मुख से बचन नहीं निकलते थे । वह बड़भागिनी अहल्या प्रभु के चरणों से लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रों से प्रेम और आनन्द के आसुओं की धारा बहने लगी । फिर उसने मन में धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और उनकी कृपा से भक्ति प्राप्त की । तब अत्यन्त निर्मल वाणी से प्रभु की स्तुति की । इस प्रकार बार-बार स्तुति करती हुयी भगवान के चरणों से लिपट गयी । भक्ति का वर पाकर गौतम की स्त्री अहल्या आनन्द में भरी हुयी पतिलोक को चली गयी । इस प्रकार श्री रघुनाथ ने श्रापित अहल्या का उद्धार किया और पुनः शिला से गौतम तिय बना पतिलोक से भेज नारि अहल्या को बहोरा ।

●

जनक प्रण

चले राम लछिमन मुनि संगा । गए जहाँ जग पावनि गंगा।।
गाधि सूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ।।

महाराज गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने वह सब कथा सुनायी जिस प्रकार देव नदी गंगा जी पृथ्वी पर आई थी ।

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहै गम नाहीं गिरा गुन ज्ञान गुनी को ।
जो करता धरता हरता सुर साहिब सा छवि दीन्ह दुनी को ।।
सोई भयो द्रव रूप सही जो है नाथ बिरंचि महेस मुनी को ।
मानि प्रतीत सदा तुलसी जल काहे न सेवत देव धुनी को ।।

प्रभु ने ऋषियों सहित गंगाजी में स्नान किया । ब्राह्मणों ने भाँति-भाँति के दान पाये । फिर प्रभु मुनिवृन्द के साथ चले और शीघ्र ही जनकपुर के निकट पहुँच गए ।

बनइ न बरनत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई ।।

एक सुन्दर अमराई देखकर महामुनि श्रीराम और लक्ष्मण के साथ रुक गये ।

मिथिलापति जनक जी ने जब यह समाचार पाया कि विश्वामित्र महामुनि आये हैं तब उन्होंने मंत्री, योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु सतानन्द के साथ मुनि विश्वामित्र से मिलने गये । राजा ने मुनि को सादर प्रणाम किया और मुनि ने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया । कुशल समाचार पूछकर मुनि ने राजा को बैठाया । उसी समय दोनों भाई फुलवारी देखकर आ पहुँचे । रामजी की मधुर मनोहर मूर्ति देखकर राजा बिदेह विशेष रूप से बिदेह हो गये । राजा बार-बार प्रभु को देखते हैं । उनका शरीर पुलकायमान और हृदय उत्साह से युक्त हैं । राजा जनक मुनि की प्रशंसा कर, सिर नवा उन्हें नगर में लिवा गये ।

रिषय संग रघुवंश मुनि करि भोजनं विश्रामु ।

बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जाम ।।

लखन हृदय लालसा विसेषी । गाइ जनकपुर आइअ देखी ।।

लखन हृदय लालसा विसेषी । लखन के हृदय में विशेष इच्छा क्यों ? सबही के या उमर में कौतुक देखन काज । होत लालसा हृदय में ये तो कौशल राज । प्रभु ने मुनि से आज्ञा माँगी । मुनि ने आदेश दिया । जादु देखि आवहु नगर सुख निधान दोउ भाइ । करहु सुफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ ।

नगर में पहुँचते ही बालक वृन्द इनकी शोभा देखकर इनके साथ लग गये, उनके नेत्र और मन दोनों इनके सौन्दर्य पर मोहित हो गये ।

बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम ।

अंग अंग पर वारिअहि कोटि कोटि सत काम ।।

श्रीराम और लक्ष्मण के सौन्दर्य को देखकर जनकपुरवासी नर नारि बाल वृद्ध सभी अति आनन्दित होते हैं ।

सिसु सब राम प्रेम बस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ।।

निज निज रुचि सब लेहि बोलाई । सहित सनेह जाहि दो भाई ।।

युगल बन्धु के सौन्दर्य के विषय में एक कवि ने कहा है ।

कोटि मार्तण्ड चंड मंडित मुकुट क्रीट ।

चन्द्रिका चमक चक चौधि चहुँ ओर की ।।

सिर पेंच पैंची कलकुलिस गन,।

बन्दिनी विचित्र सित असल अजोर की ।।

छवि गन मुकुट विशेष राजै,।

एक सी प्रकास दोनों चित चोर की ।।

तीन लोक झाँकी ऐसी दूसरी न झाँकी ।

जैसी झाँकी हम झाँकी युगल किशोर की ।।

जनकपुर के बाल वृन्द और युगल किशोर की प्रीति भरी वार्तालाप को एक कवि ने बड़ा ही भावपूर्ण रूप से वर्णन किया है ।

जनकपुर के बालक कहते हैं,

चक्रवर्ती अवध नरेश के कुमार तुम,।
हम दीन हीनों से सनेह क्यों बढ़ाओगे ।।
तुम हो विमल बुद्धि विद्या सभ्यता के रूप,।
हमसे असभ्यो को समीप क्यों बुलाओगे ।।
एक अश्रु बिन्दु की सेवा हमारे पास,।
क्या उसी नाति हमें दरस दिखाओगे ।।
खोटे हौ खरे है, या भले है बुरे है किन्तु ।
सत्य कहो मित्र हमें भूल तो न जाओगे ।।

भगवान ने कहा,

''मित्र मन मानस में पकि सनेह नीर,।
कमल के समान सदा फूले और फलेंगे ।।
चक्रवती ताज क्या है, तीन लोक राज सुख ।
प्रेम के मुकाबिले न तुले हैं न तुलेंगे ।।
बिन्दु कवि भोले- भाले भक्तों के अनोखे चोरबे।
टेढ़े सीधे बचन कबूले हैं कबूलेंगे ।।

भगति हेतु सोइ दीन दयाला ।
चितवत चकित धनुष मखसाला ।।
कौतुक देखि चले गुरु पाही ।
जानि बिलंबु त्रास मन माही ।।

इस प्रकार कोमल, मधुर और सुन्दार बातें कह कर बालकों को जबर्दस्त बिदा किया । फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोच के साथ दोनों भाई गुरु के चरण कमलों में सिर नवा आज्ञा पाकर बैठे । मुनि की आज्ञा से सबने संध्या वंदन किया । प्राचीन कथायें और इतिहास कहते सुन्दर रात्रि के दो पहर बीत गए । दोनों भाई प्रेमपूर्वक गुरुजी चरण दबा रहे हैं । मुनि ने बार-बार आज्ञा दी तब जाकर रघुनाथ जी शयन किये । गुरु को बार-बार आज्ञा क्यों देनी पड़ी ? क्या एक बार की आज्ञा में शयन के लिए नहीं गए ।

सेवा भोजन दान में आज्ञा भंग न दोष ।
पुनि पुनि गुरुजन कही तदपि न कीजे रोष ।।

रात्रि बीतने पर मुर्गे की धुनि सुनकर उठ गये जगत के स्वामी सुजान रामचन्द्र जी भी गुरु से पहले उठ गये । गुरु जी सबसे पीछे क्यों उठे ?

गुरु सुजान श्रीराम ते पहले ही जागे सोय ।
उठे न जेहि विधि राम की निद्रा भंग न होय ।।

सकल सौच करि जाइ नहाए । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ।।
समय जानि गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

लेन प्रसून चले दोउ भाई । फूल लेने दोनों भाई क्यों जाते हैं ?

लछिमन गुरु समीप रहि जाते । राम अकेल बाटकहि जाते ।।
कारण कौन जानि रघुराई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

प्रभु श्रीराम ने सोचा-

जब हम तोरिहै फूल सलोना तब लग लछिमन बनैहे दोना ।
सूरजमुखी जब हम लेव उतारी । लछिमन तोरिहै गुलाब संभारी ।।
चटपट कार्य शीघ्र बनि जाई ।
इसलिए लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

दूसरा भाव-

सोच रहे मन में रघुराई । अइहैं ब्याहन चारो भाई ।।
भरत राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकै नर नारी ।।
लखन सत्रुसूदन एक रूपा । नख सिख ते सब अंग अनूपा ।।
दुइ देखन मह चारो भाई । इसलिए-लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

तीसरा भाव-

समाचार यह घर घर छाई । मुनि के संग कुँअर दोउ आई।।
घर घर यह चर्चा नहि थोरे । एक है श्याम एक है गोरे ।।
आज जौ लछिमन जाउ विहाई । बाग में कहै लोग व लुगाई ।।
श्याम वरन देखो सखि ऐसे । गोर वरन होइहै जन कैसे ।।
युवतिन कै मनसा रहि जाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

चौथा भाव-

सोच रहे मन में भगवाना । काम जगत में है बलवाना ।।

काम भूप जब करत चढ़ाई । बड़े बड़े सूर जात विक लाई ।।

एक के संग अगर दुइ होई । काम क भाव कदापि न होई ।।

भाई चले धर्म रहि जाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।।

पुष्प वाटिका में सीताजी की शोभा देखकर श्रीराम जी ने बड़ा सुख पाया । हृदय में सीताजी के सौन्दर्य की सराहना करते हुए दोनों भाई गुरु जी के पास आये । फूल पाकर मुनि ने पूजा की । फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों । दूसरे दिन जनक जी सतानन्द जी को भेजकर गुरु विश्वामित्र को दोनों भाइयों सहित धनुष यज्ञशाला में आने का निमंत्रण भेजा । फिर मुनियों के समूह सहित कृपालु श्री रामचन्द्र जी धनुष यज्ञशाला देखने चले । धनुष यज्ञशाला में पहुँचने पर उन्हें देखकर सभी लोग सुखी हुये । सभी ने श्रीराम जी को अपनी-अपनी ओर ही मुख किये हुए देखा किन्तु इसका रहस्य कोई नहीं जान सका ।

सब मंच ते मंचु एक सुन्दर विसद विसाल ।

मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ।।

प्रभु को देखकर सब राजाओं का ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्र ही धनुष तोड़ेंगे इसमें सन्देह नहीं किन्तु अभिमानी राजा यह सुनकर हँसने लगे । उन्होंने कहा- धनुष टूटने पर भी विवाह होना कठिन है । भले और अभिमानी राजाओं में ऐसी बातें हो रही थी । तब अवसर जानकर जनक जी सीताजी को बुला भेजा ।

राम रूप अरु सिय छवि देखे । नर नारि परिहरी निमेषो ।।

तब बन्दी जन जनक बोलाए । विरदावली कहत चलि आए ।।

कहु नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाँट हियँ हरषु न थोरा ।।

शिवजी के इस कठोर धनुष को इस राज समाज में जो तोड़ेगा तीनों लोकों के विजय के साथ जानकी जी बिना विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी । जनक जी के प्रण को सुनकर बीरता के अभिमानी राजा तमककर धनुष पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं । दस हजार

राजा एक ही बार धनुष उठाने लगे तो टाले नहीं टला। सभी राजागण हँसी के पात्र बन गये और हतप्रभ होकर अपने-अपने समाज में जाकर बैठ गये। जब सम्पूर्ण राज समाज धनुष न तोड़ सका तो राजा जनक बड़े दुःखी और निराश हुए। उन्होंने राजाओं को फटकारते हुये कहा- "आप लोग अब अपने-अपने घरों को जाइये। ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नही है। यदि मैं जानता कि पृथ्वी बीरों से खाली हो गयी है तो मैं ऐसा प्रण ही न करता। यदि मैं अपना प्रण त्यागता हूँ तो सुकृत के साथ-साथ संसार में हँसी का पात्र भी बनता हूँ"। जनक के बचन सुनकर सभी लोग दुःखी हुये किन्तु लक्ष्मण जी तमतमा उठे। उनकी भौंहे टेढ़ी हो गयी, ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलों में सिर नवा कर कहा- "रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्र जी के सभा में उपस्थित रहने पर जनक जी ने जैसी अनुचित बात कही वह सहनीय नहीं है। यदि मैं आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो सारे ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ और कच्चे घड़े के समान फोड़ डालूँ। इस पुराने धनुष की कौन सी बात है।

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।

जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौ धनुमाथ॥

लक्ष्मण जी के आवेशपूर्ण बचन सुनकर पृथ्वी डगमगा गयी और दिशायें भी डोल गयी। सभी राजागण डर गये और जनक जी सकुचा गये। किन्तु श्री सीताजी प्रसन्न हुयीं। श्रीरामचन्द्र जी ने इशारे से लक्ष्मण जी को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया।

विस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥

उठहु राम भंजहु भव चाया। मेटहु तात जनक परितापा॥

श्रीराम ने मन ही मन गुरु को प्रणाम किया और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठा लिया। धनुष को लेते, चढ़ाते और खींचते हुए किसी न नहीं देखा।

लेत चढ़ावत खैचत गाढ़े। काहू न लखा रहे सब ठाढ़े॥

उसी समय श्रीराम ने धनुष को बीच से तोड़ डाला। भयङ्कर कठोर ध्वनि सारे संसार में व्याप्त हो गयी।

भरे भुवन घोर कठोर रब रवि बाजि तजि मारगु चले।

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कुरुम कलमले॥

सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारही ।

कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारही ।।

सारे ब्रह्माण्ड में जय-जयकार की ध्वनि छा गयी जिसमें धनुष टूटने की ध्वनि जानि ही नहीं पड़ती । सभी लोग प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि श्रीरामचन्द्र जी ने शिव के भारी धनुष को तोड़ डाला । ब्रह्मा आदि देवता मुनीश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा कर रहे और आशीर्वाद दे रहे हैं । सखियों सहित रानी सुनयना अत्यन्त हर्षित हुई । समस्त राजागण श्रीहीन हो गये । गुरु सतानन्द की आज्ञा से श्री सीताजी श्रीराम के पास सखियों सहित आई । सखियों के कहने पर प्रभु के गले में जयमाल डाल दिया । प्रभु के हृदयवर जयमाल देखकर देवता लोग फूल बरसाने लगे । देवताओं की स्त्रियाँ नाचने गाने लगी । ब्राह्मण वेद ध्वनि कर रहे हैं, भाँट लोग विरदावली बखान रहे हैं । पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ दिया और सीताजी को वरण कर लिया ।

इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम रघुवंश शिरोमणि श्रीराम ने निराश और हताश विदेहराज जनक के प्रण की रक्षा कर उन्हें बहोर लिया ।

नारि अहला जनक प्रण, रखुवंशनि को वंश ।

गई बहोरि सो बाल में सूरवंश अवतेश ।।

सियावर रामचन्द की जय

गरीब नेवाजू

मग में पथिक किरात गन कोल भिल्ल गुहराज ।
अवध काण्ड में देखिए राम गरीब नेवाज ।।
सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बन्धु समेत ।
वंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ।।

प्रभु श्रीराम माँ कैकेयी की आज्ञा से बन की आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर स्त्री एवं भाई सहित चल पड़े । चलने के पहले उन्होंने ब्राह्मणों और गुरु के चरणों की बन्दना की । उनके जाने से सभी अयोध्यावासी अचेत से हो गये । श्रीरामचन्द्र जी को जाते हुए देखकर अयोध्यावासी ब्याकुल होकर उनके साथ हो लिये ।

चलत राम लखि अवध अनाथा । विकल लोग सब लागे साथा ।।
साती सचिव सहित दोउ भाई । सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ।।

जब निषादराज को यह समाचार मिला तब वह अपने प्रियजनों के साथ फल-मूल लेकर प्रभु से मिलने चल पड़ा । दंडवत करके भेंट सामने रखकर अत्यन्त प्रेम से प्रभु को निहारने लगा । श्रीरघुनाथ जी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल समाचार पूछा ।

राम लखन सिय रूप निहारी । कहहि सप्रेम ग्राम नर नारी ।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ।।

सीताजी सुमंत्र जी भाई लक्ष्मण सहित कंदमूल फल खाकर रात्रि विश्राम किये ।

प्रातःकाल होते ही श्रीरामचन्द्र जी जबर्दस्ती सुमन्त्र को लौटाया । श्रीराम लक्ष्मण सीताजी के चरणों में सिर नवाकर इस तरह लौटे जैसे कोई ब्यापारी अपना मूलधन गँवाकर लौटा हो ।

इसके बाद प्रभु जी गंगा जी के तीर पर आये

मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।

कभी कभी भगवान को भी भक्तों से काम पड़े।

जाना था गंगा पार प्रभु केवट की नाव चढ़े ।।

अवध छोड़ प्रभु बन को धाये । लखन सीय संग गंगातट आये।।

केवट मन ही मन हरषाये । घर बैठे प्रभु दर्सन पाये ।।

हाथ जोड़कर प्रभु के आगे केवल मगन खड़े । जाना-

प्रभु बोले तुम नाव चलाओ, पार हमें गंगा पहुँचाओ ।

केवट बोला सुनो हमारी, चरण धूल की महिमा भारी ।।

मैं गरीब यह नइया मेरी नारी न बन पड़े । जाना था-

केवट दौड़ के जल भर लाया, चरण धोय चरणामृत पाया ।

वेद ग्रंथ जिनके यस गाया, केवट उनको नाव चढ़ाया ।।

बरसे फूल गगन ते भक्त के भाव बढ़े । जाना था-

प्रभु देने लगे उतराई, केवट कहे सुनो रघुराई ।

मैने तुमको पार किया प्रभु तुम मोहि पार करे ।।

जाना था गंगा पार प्रभु केवट के नाव चढ़े ।

प्रभु ने केवट से नाव क्यों माँगा ?

पैर उठाकर जो धर देते । गंगा पार तुरत होइ लेते ।।

जो तुम कहौ संग है नारी । अति कोमल मिथिलेश कुमारी ।।

सियहि उठाइ गोद कर लेते । गंगा पार तुरत कर लेते ।।

क्यों न कियो अस कृपा निधाना । मागी नाव न केवट आना ।।

भगवान केवल केवट पर कृपा करने के लिये ही उससे नाव माँगा । यही प्रभु की नर लीला है । प्रभु ने केवट से नाव मांगा । प्रभु के मांगने पर भी केवट नाव नहीं लाया और कहा-

कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।

प्रभु के परमु को सतत उनके सेवा में रत लक्ष्मीजी नहीं जान सकी । शेषावतार लक्ष्मण भी जिसके मरमु नहीं जान सके । उसके मरमु को जानने

का दावा केवट करता है ।

उमा मरम यह काहू न जाना । छन मह सबहि मिले भगवाना ।।
लछिमन हू यह मरम न जाना । जो कुछ चरित रच्यो भगवान ।।
तेसे अति केवट अज्ञाना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।

* * * *

सो जाने जेहि देउ जनाई । जानत तुमहिं तुम्हें होइ जाई ।।
तुम्हरी कृपा तुमहि रघुनन्दन । जाने भगत भगत उर चन्दन ।।
प्रभु की कृपा मरम यह जाना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।

प्रभु श्रीराम ने केवट से नाव मांगी, पर वह लाता नहीं । वह कहने लगा- मैंने तुम्हारा मर्म जान लिया है । तुम्हारे चरण कमलों के धूल के विषय में लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है । चरण रजकण छूते ही पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री हो गयी । मेरी नाव तो काठ की है । काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं । अत: आपके चरण रज के छूने से मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायेगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायेगी । मेरी नाव समाप्त होने पर मेरे कमाने खाने का साधन भी समाप्त हो जायगा और आप गंगा पार भी न जा सकेंगे । मेरे पास कोई धंधा नहीं रह जायगा । मेरे परिवार का पालन पोषण भी नहीं हो पायेगा । इसलिए हे प्रभु ! यदि आप उस पार अवश्य जाना चाहते हैं तो मुजे पहले अपने चरण कमल धोने के लिये कहें । हे नाथ !

पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं ।।
बरू तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय रखरिहौ ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहों ।।

केवल अपने बात की सच्चाई के लिए प्रभु की दुहाई देता है और पिता दशरथ की सौगन्ध खाता है । अपनी हठ और दृढ़ता के लिये कहता है कि भले ही भइया लक्ष्मण मेरी बात पर मुझे तीर मारे, लेकिन हे नाथ मैं बिना पैर धोये नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा और न तो आपको पार उतारुँगा !

सुनि केवल के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहस करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन ।।
कृपा सिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ।।

प्रभु श्रीराम लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखा क्यों ?

हार गये प्रथमहि वचन सीय लखन सम राम ।
करवावे न और सन पद सेवा को काम ।।

प्रभु सीता और लक्ष्मण से ही पद सेवा का वचन दे चुके थे । यहाँ केवल पद प्रक्षालन करना चाहता है ।

ताते सीता लखन तन चितये राजीव नैन ।
दोनों की रुख पाइके बिहसे करूना ऐन ।।
बेगि आनु जल पाय पखारु । होत बिलंबु उतारहि पारु ।।
केवट राम रजायसु पावा । पानि कठौता भरि लेइ आवा ।।

प्रभु की आज्ञा पाते ही केवट प्रसन्नतापूर्वक कठौता में जल भरकर पद प्रक्षालन हेतु ले आया ।

केवट कठौता ही में जल क्यों लाया ? क्या अन्य पात्र नहीं था ? एक भक्त कवि का भाव है कि कठौता में जल क्यों लाया ?

पानि कठौता में भरौ पाँव पखारन हेतु ।
रज समेत प्रभु चरन की गुह परीक्षा लेहु ।।
काठ कर नौका निज जानी । केवट भरे कठौता पानी ।।
कठवा चरन परसि उड़ि जैहे तो प्रथमहि पारिख होइ जैहै ।
उड़े कठोता के नहि हानी । नौका बचै यहै अनुमानी।।
अस विचार मन मंत्र दृढावा । पानि कठौता भर लै आवा ।।

अत्यन्त आनन्द और प्रेम से उमंग कर भगवान के चरण कमल धोने लगा । सभी देवता फूलों की वर्षा कर उसके भाग्य की सराहना करने लगे । केवट के समान पुण्य की राशि कोई नहीं है ।

पद पखरि जलुयान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ।।

निषादराज और लक्ष्मण सहित श्री सीताजी ओर श्रीराम जी उतर कर गंगा जी रेत में खड़े हो गये । तब केवट उतरकर प्रभु का दंडवत किया। उसको दंडवत करते हुये देखकर प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ नहीं दिया । पति के हृदय की बात जानने वाली सीताजी आनन्द भरे मन से अपनी रत्नजड़ित अँगूठी उतार कर प्रभु को दिया । प्रभु ने केवट को उतराई लेने को कहा । तब केवट ने व्याकुल होकर प्रभु के चरण पकड़ लिये और कहा- हे नाथ आज मैंने क्या नहीं पाया ? मेरे दोष दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गयी । विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी । प्रभु श्रीराम जी लक्ष्मण जी और सीताजी ने बहुत आग्रह किया परन्तु केवट ने कुछ नहीं लिया । तब करुणा के धाम, भक्तवत्सल सरल हृदय श्रीरामचन्द ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया । केवट धन्य हो गया ।

गंगा पार होने के बाद प्रभु श्रीराम लक्ष्मण सीता आदि ने गंगा स्नान कर माँ गंगा, गणेश एवं शिव का स्मरण कर बन को चले । तेहि दिन भयउ विटप तर बासू । प्रातःकाल प्रभु तीर्थराज का दर्शन किये । भारद्वाज मुनि का आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् चार ब्रह्मचारियों के साथ आगे की यात्रा शुरु की ।

विदा किए बटु विनय करि फिरे पाइ मम काम ।
उतर नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ।।

जमुना जी के किनारे रहने वाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर कि निषाद के साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दरी स्त्री आ रही है, अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मण जी, श्रीरामजी और श्रीसीताजी का सौन्दर्य देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे । सबके मन में बहुत सी लालसाएँ भरी हैं । पर वे नाम और गांव पूछने में सकुचाते हैं । उन लोगों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से श्रीरामचन्द्रजी को पहचान लिया । उनके मुख से पिता की आज्ञानुसार वनवास सुनकर सब लोग दुःखी होकर पछता रहे हैं । राजा और रानी ने अच्छा नहीं किया । गाँव की स्त्रियाँ आपस में कह रही हैं, "हे सखी ! कहो वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे सुन्दर सुकुमार बालकों को बन में भेज दिया है । श्री सीता राम और लक्ष्मण के रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेह से ब्याकुल हो जाते हैं ।

पथिक अनेक मिलहि मग जाता । कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता ।।
राज लखन सब अंग तुम्हारे । देखि सोच अति हृदय हमारे ।।

श्रीराम को पथ में पैदल ही जाते देखकर ग्रामीणों को अत्यन्त दुःख होता है। वे लोग उनके साथ जाना चाहते हैं और उन्हें गन्तव्य तक पहुँचाकर ही लौटना चाहते हैं। इसप्रकार वे प्रभु से प्रेमवश पुलकित शरीर हो नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर पूछते हैं। किन्तु कृपा के समुद्र सरल हृदय श्रीरामचन्द्र जी कोमल और विनययुक्त वचन कह कर उन्हें लौटा देते हैं। श्रीराम का आगमन सुनकर बाल बूढ़े, स्त्री, पुरुष अपने-अपने गृह काज विसार कर उनके रूप का दर्शन करते हैं। कोई-कोई तो उन्हें देखकर अनुरागपूर्वक उनके साथ चलने लगता है। कोई घड़े में जल लाकर उनसे आचमन करने के लिये निवेदन करता है।

सिय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं।।

स्त्री स्वभाव के अनुसार वे श्रीसीता जी से दोनों राजकुमारों का परिचय पूछती हैं। स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े जो उनका दर्शन नहीं कर पाते हैं, हाथ मलते और पछताते हैं।

एहि विधि रघुकुल कमल रवि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखात विपिन सिय सौमित्र समेत।।

इस प्रकार प्रभु ग्रामीणों से बात करते सुख देते हुये आगे प्रस्थान करते हैं।

देखत वन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए।।

श्रीराम ने मुनि को दंडवत किया। विप्र श्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्रेष्ठ मुनि ने प्राणप्रिय अतिथियों का कन्द-मूल-फल से सत्कार किया। विश्राम करने के लिए सुन्दर स्थान बता दिया। प्रभु श्रीराम मुनि से ऐसा स्थान जानना चाहते हैं जहाँ वे सीता और लखन सहित पत्तों और घास की कुटी बनाकर कुछ दिन तक निवास कर सके। मुनि श्रेष्ठ प्रभु श्रीराम से कहते हैं- प्रभु आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये, वहाँ पर आपके लिये हर प्रकार की सुविधा है। वहाँ सुहावना पर्वत है, सुन्दर बन है और पवित्र नदी है। महामुनि बाल्मीकि ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। सीता सहित दोनों भाइयों ने श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया। प्रभु ने सुन्दर घाट देखकर वही रहने की व्यवस्था करने हेतु लक्ष्मण को आज्ञा दी।

कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।

सब देवता कोल-भीलों के वेष में आये और उन्होंने पत्तों और घासों के सुन्दर घर बना दिये। दो कुटियों का निर्माण हुआ। एक सुन्दर छोटी सी तथा दूसरी बड़ी थी।

चित्रकूट रघुनन्दनु छाए । समाचार सुनि सुनि मुनि आए ।।
यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नव निधि घर आई ।।

श्रीराम के आगमन का समाचार जब कोल-भीलों ने पाया तो ऐसे प्रसन्न हुए मानो नवो निधियाँ उनके घर पर ही आ गयी हो । वे दोनों में कन्द, मूल, फल भर-भरकर चले मानों दरिद्र सोना लूटने चले हो । भेंट आगे रखकर वे प्रभु का सत्कार करते हैं और अत्यन्त अनुराग के साथ प्रभु को देखते हैं । श्रीराम उन सबके प्रेम को देखकर प्रिय वचनों से उनका सम्मान करते हैं । वे भी बार-बार प्रभु को जोहार करते हैं और हाथ जोड़कर विनीत बचन कहते हैं । "हे नाथ ! आपके चरणों का दर्शन पाकर हम सब सनाथ हो गये । हे कोसलराज ! हमारे ही भाग्य से आपका यहाँ शुभागमन हुआ है । हे नाथ ! जहाँ-जहाँ आपने चरण रक्खे हैं वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य है । आपको देखकर वन के पशु-पक्षी सबके जीवन सफल हो गये । हम सब भी परिवार सहित आपका दर्शन पाकर धन्य हो गये ।"

"हे प्रभु ! आपने अच्छी जगह विचार कर निवास किया है । यहाँ पर सभी ऋतुओं में आप सुखी रहियेगा । हम लोग सब प्रकार से आपकी सेवा करेंगे । यहाँ के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं । हम उन उन स्थानों में आपको शिकार खेलावेंगे और यहाँ के तालाब, झरने और जलासयों को दिखावेंगे ।"

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ।।

जिन्ह राम ब्रह्म को वेदों ने नेति-नेति कहकर गाया है । जहाँ तक मुनियों का मन भी नहीं पहुँच पाता है ऐसे श्रीराम कोलो और किरातों को उस प्रकार सुनते हैं जैसे पिता अपने बालकों की बातों को ध्यान से सुनता है ।

इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा, चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के राजकुमार श्रीराम ग्रामीणों और कोल-भीलों से प्रेमपूर्वक बातें करते हैं और सरल हृदय से उनकी भेंटे स्वीकार कर सम्मान देते हैं ।

मग में पथिक किरात गन कोल भील्ह गुहराज ।
अवधकाण्ड में देखिये राम गरीब नेवाज ।।

●

सरल

देखि लेहु बन काण्ड में अधिक सरलता कीन्ह ।
सवरी गीध सुसेवकनि जाइ-जाइ सुख दीन्ह ।।

रघुपति चित्रकूट वसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ।।

चित्रकूट में बसकर प्रभु श्रीराम नाना प्रकार चरित्र किए । सभी मुनियों को सम्मानपूर्वक विदा कर श्रीराम अत्रि मुनि के आश्रम पहुँचे । मुनि ने प्रभु की हाथ जोड़कर स्तुति की । परम शीलवती और विनम्र सीताजी अनसूया जी के चरण पकड़कर उनके मिली । अनसूया ने सीताजी को आशीर्वाद देकर दिब्य बस्त्र और आभूषण पहनाये । पश्चात् सीताजी को नारी धर्म का उपदेश दिया । अत्रि मुनि से आज्ञा लेकर प्रभु श्रीराम ने दूसरे वन के लिए प्रस्थान किया ।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ।।
आगे राम अनुज पुनि पाछे । मुनि वर वेष बने अति काछे ।।
उभय बीच श्री सोहइ कैसे । ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ।।

रास्ते में विराध राक्षस का संहार कर अपने धाम पठाया । पुनः प्रभु मुनि सरभंग के पास आये जो दिन रात प्रभु का रास्ता निहार रहे थे । मुनि सरभंग प्रभु को देखते-देखते उनके रूप में ही ध्यानस्थ हो प्रभु के धाम में चले गए ।

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ।।

फिर प्रभु मुनियों के समूह के साथ आगे वन की ओर चले । मुनियों के अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निसिचरहीन करने की प्रतीज्ञा की । इस प्रकार प्रभु श्रीराम चित्रकूट में निवास करते हुए देवताओं तथा मुनियों को

सुख देते हुए नाना प्रकार चरित करते हैं जिससे सुर, नर, मुनि सभी भयरहित हो जाते हैं ।

पंचवटी बसि श्री रघुनायक । करत चरित सुर मुनि सुखदायक ।।

इस प्रकार पंचवटी में पृथ्वी को राक्षस विहीन करने की भूमिका बन जाती है । सूपनखा का लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटा जाता है और दण्डकारण्य में खर-दूषण आदि राक्षसों का वध श्रीरामचन्द्र द्वारा होता है । रावण द्वारा माँ जानकी का हरण भी होता है । श्रीरामचन्द्र जी अनुज सहित खग मृग भौंरो से सीताजी का पता पूछते हुए विरही राजकुमार की तरह चरित करते हैं ।

एहि विधि खोजत विलपत स्वामी । मनहुँ महा विरही अतिकामी ।।
पूरन काम राम सुख रासी । मनुज चरित कर अज अविनासी ।।
आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह देखा ।।
करि सरोज सिर परसेउ कृपा सिन्धु रघुबीर ।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ।।

आप्त काम सच्चिदानन्द स्वरूप श्री रघुनाथ जी मनुष्य लीला की मर्यादा में श्री सीताजी को खोजते हुए पंचवटी से दक्षिण के वनों में प्रवेश करते चले जा रहे थे । उन्होंने श्री जटायु जी का पंख कटी हुई अवस्था में पृथ्वी पर पड़े हुए और निज चरण की रेखाओं को स्मरण करते हुए देखा । देखते ही कृपा के समुद्र दयाबीर श्री रघुबीर ने अपने कर-कमलों को गीधराज के सौभाग्यशाली सिर पर फेर दिया । बस श्रीकर कमलों का स्पर्श होते ही और श्रीराम जी छवि धाम मनोज मनहर मुखारविन्द का दर्शन मिलते ही श्री जटायु जी सारी व्यता मिट गयी ।

श्रीरामचरितमानस में श्री रघुनाथजी चरणाश्रित बहुत से भक्तों का उल्लेख मिलता है परन्तु चरणों की रेखा का स्मरण केवल जटायु के ही सम्बन्ध में दिया गया है । अतः इस रहस्य की खोज हुई कि गीधराज को रेखाओं के ध्यान का संस्कार किस सद्गुरु से और कब प्राप्त हुआ था । इसके अलावा वह सद्गुरु भी ऐसा सिद्ध होना चाहिए जो श्रीराम जी के चरणों की रेखाओं को इष्ट और अवलम्ब मानकर स्वयं भी उनके ध्यान की अवस्था वाला रहा हो । श्री जटायु जी श्री जानकी अम्बा के सच्चे भक्त थे

और उन्हीं से जटायु जी को भगवान श्रीराम के नाम रटन और उनके चरण की रेखाओं के स्मरण का गुरुमंत्र मिला था । श्री सीताजी का इष्ट उनके वियोगकाल में श्री रघुनाथ जी के चरण चिन्ह ही थे । वियोगकाल में श्रीराम के नाम रटन और उनके चरण चिन्हों का स्मरण ही श्री सीता का एकमात्र सहारा था ।

जेहि विधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम ।

जो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम ।।

जो छवि सीता राखि उर में जो छवि का तात्पर्य श्रीराम के चरण चिन्हों से ही । भगवान श्रीराम जिस समय कपट कुरंग की पीछे-पीछे जा रहे थे उस समय उनका पृष्ठ भाग सीता माँ की ओर था और जब भगवान मृग के पीछे जा रहे थे तो उनके पैर उठने से उनका तलवा भाग और उसमें अंकित चिन्ह ही दिखायी पड़ रहे थे । पंख कटी हुई अवस्था में पड़े हुए भक्त जटायु मन से श्रीराम चरण-रेखा का स्मरण कर रहे थे, और वाणी से श्रीराम नाम का रटन हो रहा था । इस प्रकार इनके भी मन, वचन और शरीर तीनों ही श्रीराम में लगे थे । ऐसी अवस्था में गीधराज को देखा । करुनामय रघुनाथ जी सीता वियोग के दुःख भूल गये और गीधराज को उठा हृदय से लगा कर रोने लगे ।

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करनामय रघुराई ।

तुलसी रामहि प्रिया विसरि गये सुमिरि सनेह सगाई ।।

तब गीध ने धैर्य धारण कर प्रभु से कहा,

नाथ दसानन यह गति कीन्ही । तेहि खल जनक सुता हर लीन्ही ।।

हे प्रभु रावण से युद्ध करते हुए मेरी ऐसी दशा हुई है । उसी दुष्ट ने जानकी जी को हर लिया है । हे गोंसाई ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा की ओर गया है । सीताजी कुररी की तरह विलाप कर रही थी । हे प्रभो मैंने आपके दर्शन हेतु ही प्राण रोक रक्खे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना ही चाहते हैं ।

गीधराज के विषय में विन्द कवि ने कहा है,

उपकार के युद्ध में शोषित धार,

सरस्वती सी तेहि छेनी हुई ।

द्विज रावण के तलवार की धार,

सो मानुज की सी निसेनी हुई ।

फिर मैथिली के दृग विन्दुकी धार,

सुजान्हवी सी गति देनी हुई ।

तन गीध के त्यागने में मिल के,

यह धार ही तीनों त्रिवेणी हुई ।

(२)

प्रण गीध का राम सहाय कहो,

भय लोक में कीर्ति जगा रहा था ।

तन राम की गोद में लेटा हुआ,

दृग विन्दु की अंजली पा रहा था ।

मत राम के रूप में रमा,

बस राम ही सा हुआ जा रहा था ।

धन जीवन राम के धाम ही में,

अपना निज धाम बना रहा था ।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा- हे तात ! शरीर को बनाये रखिए तब गीध ने मुस्कराते हुए कहा-

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ।।

सो मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ केहि खागे ।।

यद्यपि यह लोक प्रसिद्ध नीति है कि देह प्रान ले प्रिय कुछ नाहीं। परन्तु जिन महाभागों की श्रीराम चरण कमलों की लगन है उनकी यही दृढ़ धारणा रहती है-

गुना गार संसार दुख रहित विगत संदेह ।

तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन कहुँ देह न गेह ।।

फिर जटायु जी तो रामभक्तों के एक स्तम्भ हैं, इन्हें देह गेह की ममता कैसी ? इनकी निष्ठा तो इनके अनुपम कर्त्तव्य से ही स्पष्ट होती है ।

प्रान प्रान के जीवन के जिव सुख के सुख राम ।

तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि विधि बाम ।।

ऐसे गीधराज को दयालु श्रीराम गोद में लेकर आँसू बहाते हैं ।

न रोये बन गमन में श्रीपिता की बेदनाओं पर,

उठा कर गीध को निज गोद में आँसू बहाते हैं ।

जलभरि नयन कहहि रघुराई । तात कर्म ते निज गति पाई ।।

* * * *

तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम पूरन कामा ।।

सुनि प्रभु बचन राखि उर मूरति चरन कमल सिर नाई।

चल्यो नभ सुनत राम कल कीरति अरु निज भाग बड़ाई।।

पितु ज्यो गीध कृपा करि रघुपति अपने धाम पठायो ।

ऐसे प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ।।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।

स्याम गाल बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि वारी ।।

गीधराज जटायु धन्य है जो सीताजी को छुड़ाने के लिये घायल हुए और नीच शरीर होने पर भी प्रभु की गोद में उनके मधुर मुखारविन्द को निहारते हुए ही मुक्तिमयी मनोहर मृत्यु प्राप्त की । गीधराज की ऐसी मृत्यु का समाचार सुनकर विरक्त, कर्मकाण्डी भक्त, ज्ञानी मुनि सिद्ध ऊँच और नीच- सभी उनसे ईर्ष्या करने लगे । आज तक कितने मर गये, कितने मर रहे हैं और आगे घड़ी पहर के अन्तर से कितने मरेंगे, किन्तु जटायु की सी मौत आज तक किसी की नहीं हुई । कोई मरने पर मुक्त होता है, कोई जीते जी मुक्त हो जाता है । मुक्त-मुक्त में भेद होता है । किन्तु इन सारी मुक्तियों से भी जटायु की मृत्यु सबसे बढ़कर है ।

इस प्रकार परम धाम की यात्रा का निश्चय होते ही परम दयालु सरल श्रीराम की कृपा से गीधराज श्री जटायु जी ने तत्काल ही भगवत्-स्वरूपता को प्राप्त कर लिया और सजल नयन से श्रीराम की स्तुति करके श्रीबैकुण्ठ

धाम के नित्य किङ्करों में जाकर निवास किया । पश्चात् श्रीप्रभु ने अपने हाथों से ही उनका यथोचित संस्कार करके अपनी भक्तवत्सलता का परिचय दिया।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।
स्याम गात विसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ।।
अविरल भगति मागि बर गीध गयउ हरि धाम ।
तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्हीं राम ।।
कोमल चित अति दीन दयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ।।
गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।।

भगवान श्रीराम के सेवक भक्तों में सभी बड़भागी थे किन्तु गीध तो परम बड़बागी था ।

अह धन्य लक्षिमन बड भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ।।
बड भागी अंगद हनुमाना । चंरण कमल चापत विधि नाना ।।
को तुम राम दीन अनुरागी । आयो मोहि करन बड भागी ।।
किन्तु गीध-राम काज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयो परम बडभागी ।।
ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी के आश्रम पगु धारा ।।

उपर्युक्त अर्द्धाली राम उदारा पद से भगवान के गति देने की उदारता सूचित की गयी है । यथा-

देखि दुखी निज धाम पठावा । (विराध)
राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा । (शरभङ्गजी)
राम राम कहि तनु तजहि पावहि पद निर्बान । (खरदूषणादि)
मुनि दुर्लभ मति दीन्ह सुजाना । (मारीच)
गीध गयउ हरि धाम । (जटायु)
गयउ गगन आपनि गति पाई । (कबन्ध)

इस प्रकार सबको गति प्रदान करते हुए उदार शिरोमणि भगवान श्रीराम शबरी को भी गति देने के लिए उसके आश्रम में पधारे । आश्रम शब्द से शबरी जी का विरक्त होना सूचित किया गया है, क्योंकि बन में बहुत से कोल-किरात आदि भी निवास करते हैं परन्तु उनके घरों को कभी भी आश्रम

नहीं कहा जाता । शबरी जी मन, वचन और शरीर-सर्वांग से श्रीभगवान के शुद्ध प्रेम में सरोबर थी । प्रेम मगन से शबरी जी के मन की, मुख बचन न आवा से बचन की और पद सरोज सिर नावा से काया की दशा सूचित की गयी है ।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ।।

सबरी परी चरन लपटाई । से उनकी प्रेम विह्वलता भी सूचित होती है, ठीक वैसी ही जैसी माता कौशल्या जी प्रेम विह्वलता दर्शायी गयी है- "बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी ।" वस्तुतः भगवान में शबरी की निष्ठा माता कौशल्या जी के ही समान वात्सल्य भाव की थी । जैसे माता अपने बच्चे के लिये अच्छी प्रकार चीजें संग्रह करके रखती है वैसे ही उसने वे सुन्दर फल भगवान के लिये लाकर उन्हें मानो अमृत से हजारों गुने सुन्दर स्नेह के रस में डुबो कर रक्खा था ।

नाभादास ने भक्तमाल में लिखा है- सबरी पहले जन्म में राजरानी थी । एक बार वह राजरानी के रूप में तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने गयी । राजरानी होने के कारण उसे तीर्थराज में राजसंरक्षण और परदा के अन्दर ही स्नान आदि कार्य करना पड़ा । वह न तो विधिवत स्नान कर सकी और न सन्तों का सम्यक दर्शन पूजन आदि ही कर सकी । इस प्रकार वह पूर्ण रूप से सतसंग का आनन्द न ले सकी । अतः उसने तीर्थराज प्रयाग से प्रार्थना किया कि तीर्थराज मेरा अगला जन्म ऐसा हो जिससे मैं पूर्णरूप से संतों की सेवा कर सकूँ और निर्बिघ्न भगवत भजन कर सकूँ । इसलिए उसका जन्म कोल्ह-भील के सबर जाति में हुआ जिससे उसका नाम सबरी पड़ा । थोड़ा सयानी होने पर उसके माता-पिता उसकी सगाई के तैय्यारी करने लगे । उसकी माता उसका केश सँवार रही थी । उस समय का कवि विनीत ने उसके भावों का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है ।

करके सगाई के साथ व्याही गयी ढ़रकी तरुणाई नारि वृद्धा कहाऊगी।

जन्म के मरूगी फेर फेर के जनूगी यहाँ,

ले ले के जन्म यहाँ केती बार आऊँगी ।

जानत विनीत मेरा यहाँ है ने तेरा कोई,

कहाँ कहाँ झूठे छोरा छोरी खिलाऊँगी ।

ससुर रूपी स्वांग से न जोडूंगी नाता नया,

छोड़ छोड़ माता मोहि माँग न कढ़ाऊँगी ।

इस तरह प्रारम्भिक अवस्था में ही सबकी को वैराग्य हो गया । घूमते घूमते मतंग ऋषि के आश्रम में पहुँच गयी और सन्त सेवा करने लगी । सबरी की भक्ति और सेवा से प्रसन्न मतंग ऋषि ने उससे कहा- सबरी ! श्री रघुनाथ जी इसी आश्रम में आकर तुम्हें अवश्य दर्शन देंगे । सबरी को गुरु के इस बचन पर पूर्ण आस्था और विश्वास था ।

उसी दिन से वह प्रतिदिन सबेरे उठते ही यह निश्चय करती कि भगवान आज अवश्य पधारेंगे । फिर आश्रम को झाड़-बुहार कर स्वागत की तैयारी करती, अच्छे-अच्चे मीठे-मीठे फल-मूल पत्तों के दोनो में सजाकर रखती और बार-बार बाहर आकर श्री रघुनाथ जी की बाट जोहती । इस तरह भगवान की प्रतीक्षा में उसके दिन बीतते थे । और एक दिन प्रभु सबरी के आश्रम में आ ही गए ।

सवरी देखि राम गृह आए । मुनि के बचन समुझि जिएँ भाए ।।

सबरी ने ज्योंही श्रीराम और श्री लक्ष्मण को देखा त्योंही वह उनके चरणों में लपट गयी । भगवान के प्रेम में वह इतनी मगन थी कि उसके मुख से बचन ही नहीं निकलते थे । वह बार-बार भगवान के चरणों में सिर नवाती थी और प्रभु के सौन्दर्य को निहारती थी । कुछ समय के बाद उसे सज्ञान हुआ । तब वह जल लाकर आदरपूर्वक भगवान के चरण धोयी । फिर उसने दोनों भाइयों को सुन्दर आसन पर बैठाया ।

स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । सवरी परी चरन लपटाई ।।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ।।

सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुन्दर आसन बैठारे ।।

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहे आप ।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।।

प्रेम और भाव के भूखे भगवान सबरी के बेर की सराहना करके खाने लगे । सबरी माता के समान भगवान को सामने बैठाकर अपने हाथों से ही

भगवान को बेर खिलाने लगी ।

घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे जहँ तहँ भइ पहुनाई ।

तँह तँह के सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई ।।

भगवान श्रीराम को जो स्वाद सबरी के बेर खाने में मिला वह स्वाद उन्हें घर पर, गुरु के घर और ससुराल के भोजन में भी नहीं मिला । इसलिए प्रभु ने-

सबरी के कर बेरि राम ने रुचि से खाया ।

लछिमन ने करि कपट उन्हें छिपके ठुकराया ।।

सबरी प्रेम भाव में इतनी विह्वल थी कि उसने बेरों को चीख-चीखकर भगवान को खिलाने लगी और भाव के भूखे भगवान उसे प्रेम से खाने लगे किन्तु भइया लछिमन उन बेरों को जूठा समझकर छिपा कर फेंक देते थे ।

द्रोण सहित वह बेर गिरा द्रोणाचल जाकर ।

अमृत बूटी बनी वही फिर अवसर पाकर ।।

इस प्रकार बारंबार प्रभु सराहना करते हुए सबरी के बेर खाये । फिर सबरी हाथ जोड़कर प्रभु के आगे खड़ी हो गयी । प्रभु को देखकर वह प्रेम में मगन हो गयी कि उसके मुख से बचन निकल ही नहीं रहे थे । उसने कहा- हे प्रभु ! मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ । मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ ।

अधम ते अधम अति नारी । तिन्ह मह मैं मतिमद अधारी ।।

भगवान श्रीराम सबरी की की प्रेमाभक्ति और दीनता देखकर इतना प्रसन्न हुए कि उन्होंने कहा- हे भामिनी मेरी बात सुन ! मैं तो केवल एक भक्ति का ही सम्बन्ध मानता हूँ । जाति कुल धर्म धन आदि भक्ति में बाधक या सहायक नहीं होते । ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम ने सबरी से नवधा भक्ति की चर्चा की ।

सबरी जी को जो कुछ प्राप्त हुआ वह सब संत की अनुकूलता का ही प्रसाद है । सबरी जी के प्रति श्रीमुख से जिस नवधा भक्ति का कथन किया गया है और जिसका प्रमाण पत्र उन्हें **"सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे"** इन शब्दों द्वारा दिया गया है वह निवृत्तिमार्गियों की ही नवधा भक्ति है । श्री

शबरी जी ने भक्ति शिरोमणि महर्षि श्री मतङ्ग मुनि जी महाराज की शरणागति प्राप्त कर ली थी और वे भी उसे स्वीकार करके उनके अनुकूल हो गये थे । अतः यहाँ की नवधा भक्ति का आरम्भ भी 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा' से ही किया गया है । तात्पर्य यह कि जब कोई बड़भागी जीव अपनी प्रवृत्ति "जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धनबल परिजन गुन चतुराई" का त्याग करके विरक्त हो जाता है और किन्हीं सच्चे संत सद्गुरु की शरण ग्रहण कर लेता है तो वही उसकी प्रथम भक्ति होती है । दूसरी भक्ति जब संत सद्गुरु श्रीरामकथा का श्रवण कराने लगता है तब उसमें रति होने को कहते हैं, "दूसरि रति मम कथा प्रसंगा । तीसरी भक्ति मान रहित होकर उन संत सद्गुरु के चरण कमलों की सेवा करना है- "गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।" चौथी भक्ति भगवान के गुणों का स्वयं निष्कपट भाव से गायन करना है- चौथी भगति मान गुन गन करइ कपट तजि गान ।" अर्थात् जब श्रीगुरु के सेवा संगति में सदा रहते-रहते और उनके मुख से श्रीभगवान की कथा, गुणगान सुनते-सुनते निज मुख से भी श्रीरामयश का गान होने लगे तब चौथी भक्ति होती है ।

जब शरणागत भक्त इन चार प्रकार की भक्तियों से सम्पन्न हो जाता है तब संत सद्गुरु उसे अधिकारी जानकर श्रीराम मंत्र की दीक्षा देते हैं । अतः श्रीरघुनाथ जी शबरी से मंत्र का दृढ़ विश्वास के साथ जप करने को पाँचवी भक्ति बतला रहे हैं- "मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा । छठी भक्ति इन्द्रियों का दमन, बहुमुखी कर्मों की प्रवृत्ति से वैराग्य और सज्जन धर्म के पालन में सदा लगे रहना बतलायी गयी है- "छठ दम सील बिरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ।" अर्थात् गृहस्थ जीवन में कर्मों के प्रपंच में विशेष रूचि होने का जो अभ्यास है उसे रोककर तथा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर संत स्वभाव का पालन और भगवान के नाम रूप लीला धाम की सेवा भजन पूजन में समय व्यतीत होने लगना छठी भक्ति है । सातवीं भक्ति समस्त जग को राममय देखना, सभी के प्रति समान भाव रखना, पर-संतों को सबसे बढ़कर मानना है- सातवाँ सम मोहि मय जग देखा । मोते संत अधिक करिलेखा"। आठवीं भक्ति जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसी में सन्तुष्ट रहना और स्वप्न में भी पराये दोष को न देखना बतायी गयी है- "आठवँ जथा लाभ सतोषा । सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा" अर्थात् भक्ति की आठवी सीढ़ी तक पहुँचने पर शिष्य की भी संतवृत्ति बन

जाती है । उसे बिना उद्योग के अनिच्छित रूप से जो कुछ भी प्राप्त होता रहता है उसी से वह सन्तुष्ट रहता है और भूलकर भी किसी जीव में दोषदृष्टि न रखता, बल्कि 'अवगुन में गुन गहनि सदा है' की वृत्ति रखता है । अतः कृपालु श्रीराम इन वृत्तियों को भी अपना भजन मानते हैं और इसे आठवीं भक्ति बतलाते हैं । अन्त में प्रभु श्रीराम अपनी नवीं भक्ति के लक्षण इस प्रकार बतलाते हैं- स्वभाव से सरल होना, मन से निश्छल होना और मेरे ही भरोसे पर दृढ़ रहकर हृदय में किञ्चित भी हर्ष-विषाद का अनुभव न करना नवी भक्ति है ।

नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।

श्रीभगवान कहते है कि शबरी ? इन नौ भक्तियों में से एक भी भक्ति जिसे प्राप्त हो वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो मुझे अत्यन्त प्रिय है, फिर तुममें तो ये नवो भक्तियाँ दृढ़ रूप से विद्यमान हैं ।

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई । नारि पुरुष सचराचर कोई।।

सो अति सय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ।।

श्रीशबरी जी इन नौ प्रकार की भक्तियों की प्रत्यक्ष मूर्ति थी । उसी का फल यह हुआ कि जो पद बड़े-बड़े योगियों को भी दुर्लभ है, वह शबरी जी को अनायास सुलभ हो गया । जोगि बृंद दुरलभ गति जोई । तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई । और उन्हें वे परम प्रभु स्वयं साक्षात् आकर प्राप्त हो गये, जिनके दर्शन का अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज माया रहित ईश्वर अंश चेतन अमल सुखमय और अविनाशी रूप प्राप्त कर लेता है । यथा- मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥

नवधा भक्ति का उपदेश देने के पश्चात् श्रीप्रभु ने शबरी से माँ जानकी का पता पूछा और सबरी ने उन्हें पम्पासुर जाने और सुग्रीव से मित्रता करने के लिये कहा । शबरी ने कहा- हे प्रभु आप सब जानते हुये मुझसे पूछ रहे हैं । यह भगवान की नर लीला है इसके पश्चात् बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर शबरी जी ने उनसे प्रेमपूर्वक सब कथा सुनायी ।

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे ।

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहि फिरे ।।

इस प्रकार श्रीशबरी जी सब कथा कहकर भगवान के मुख का दर्शन

कर हृदय में उनके चरण कमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह त्याग कर उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी जिस पद को प्राप्त कर जीव को पुनः इस संसार में नहीं लौटना पड़ता है । भगवान ने गीता में कहा है कि-

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

श्रीराम जी भाव के भूखे हैं इसलिए उन्होंने भाई लक्ष्मण सहित शबरी को माता के समान आदर किया और देह त्यागने पर माता के समान जलाञ्जलि दी । भगवान श्रीराम षठऐश्वर्य सम्पन्न होने पर भी इतने सरल हैं कि उन्होंने आमिषभोगी गीध की पिता के समान यथोचित क्रिया की और जातिहीन अध जन्म महि नारि शबरी को माता के समान आदरपूर्वक जलाञ्जलि दी ।

देखि लेहु बन काण्ड में अधिक सरलता कीन्ह ।
सवरी गीध सुसेवकनि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।

सियावर रामचन्द्र की जय ।

'सबल'

किषिकन्धा में सबलता देखि लेहु तत्काल।

मारेउ एकै बान ते सप्तताल अरु बाल ।।

परम कृपालु, दीन दयालु, प्रभु श्रीराम आमिष भोगी गीधराज एवं 'जातिहीन अध जन्म महि युक्त कीन्ह अस नारि' श्रीशबरी जी को अपना परम धाम देकर अपनी भक्तवत्सलता और सरलता का परिचय देते हुए जगतजननी माँ जानकी की खोज हेतु आगे बढ़ते हैं

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्बत नियराया ।।

तँह रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देक अतुल बल सीवाँ।।

श्री सुग्रीव जी ने श्रीराम को पर्वत की ओर आते हुए देखा तो वह श्रीराम के अतुलित बलशाली रूप को देखकर भयभीत हो गया । भगवान श्रीराम के देखने मात्र से उसे प्रभु के बल और पौरुष का आभास हो गया । सुग्रीव ही नहीं बड़े-बड़े बलशाली राजा भी जब प्रभु के तेज और बल युक्त शरीर को देखते हैं तो देखते ही निस्तेज और बलहीन हो जाते हैं । स्यामल गोर मनोहर जोरी जिस समय जनकपुर में धनुष यज्ञ के रंगभूमि पर पहुँचती है उस समय बड़े बड़े बलशाली राजा 'देखहि रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रसु धरे सरीरा'। ऐसा अनुभव करते हैं ।

तब सुग्रीव ने हनुमान जी से कहा, "ये जुगल पुरुष बड़े बलशाली और रूपवान दिखायी देते हैं । तुम ब्राह्मण का रूप बनाकर जाओ और इनके विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर मुझे इसारे से इनके विषय में सूचना दो । यदि बालि ने इनको मेरा बध करने के लिये भेजा हो तो मैं तुरन्त इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ"। सुग्रीव का आदेश प्राप्त कर हनुमानजी विप्र रूप धारण कर प्रभु के समक्ष उपस्थित होते हैं ।

बिप्र रूप धरि कपि तँह गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।।

इस तरह रिष्यमूक पर्वत पर ही परमभक्त हनुमान और श्रीराम का

मिलन होता है । सर्वप्रथम बिप्ररूप में श्रीहनुमान जी क्षत्रिय रूप में विचरण करते हुए श्रीरामजी को मस्तक नवाते हैं और उनसे पूछते हैं ।

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । क्षत्रिय रूप फिरहु बनबीरा ।।

आप दोनों साँवले और गोरे राजकुमार क्षत्रिय वेष में इस बन में विचरण कर रहे हैं । आप दोनों कौन हैं ? जंगली भूमि बड़ी कठोर है और आप दोनों के पद बड़े ही कोमल हैं । किस कारण से इस कठिन बन में विचरण कर रहे हैं ? आपका शरीर अत्यन्त सुन्दर है, कोमल है और मनोहर भी है । यह बन के आतप और शीत सहन करने में असमर्थ है । फिर भी आप इसे सहन करते हुए बन में घूम रहे हैं ।

कठिन भूमि कोमल पदगामी । कवन हेतु विचरहु बन स्वामी ।

मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ।।

ब्राह्मण तो सबका आदरणीय होता है, इसलिए सबका प्रणम्य है। हनुमानजी बिप्र रूप में भी क्षत्रिय राजकुमारों को माथ नवाते हैं । उन्हें बन में विचरण करने वाले राजकुमारों के समक्ष प्रस्तुत हो प्रतीक्षा करनी चाहिए कि वे स्वयं उन्हें प्रणाम करें । किन्तु बिप्ररूप में हनुमानजी ने ऐसा किया नहीं बल्कि उनके समक्ष उपस्थित होते ही माथ नवाया । ऐसा क्यों ? यह प्रश्न मन में उठता है ।

एक भक्ति कवि ने इसका निराकरण प्रस्तुत दोहे से करता है ।

ब्रह्मचर्य हनुमन्त हैं बानप्रस्थ श्रीराम ।

जेठो आश्रम जानिके तब ते नायो माथ ।।

आश्रम धर्म के अनुसार बानप्रस्थ आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम से श्रेष्ठ माना जाता है । भगवान श्रीराम बानप्रस्थ आश्रम में थे और श्री हनुमानजी बिप्र रूप में ब्रह्मचर्य आश्रम थे । इसलिए उन्होंने श्रीराम के समक्ष अपना माथा नवाया । कभी-कभी ऐसा होता है कि तेजस्वी पुरुष को देखकर उसकी प्रति आदर एवं सत्कार का भाव उत्पन्न हो जाता है । इसलिए बिप्ररूप को देखा तो देखते ही उनके मस्तक उनके (राम) के समक्ष झुक गये । आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो यह भक्त और भगवान की आँख मिचौनी का खेल है । श्रीराम न तो क्षत्रिय राजकुमार है और हनुमान न विप्र हैं । दोनों का रूप नकली है । राम साक्षात परम ब्रह्म है और बिप्र श्रीहनुमान जी हैं जो

साक्षात् शंकरजी के अवतार हैं । अतः श्रीराम तो शंकरजी के आदरणीय और प्रणम्य है । दण्डकारण्य में जब प्रभु श्रीराम विरही राजकुमार के रूप में खग, मृग और भौंरो से श्रीसीता जी के विषय में पूछ रहे थे तो सती जी के साथ शंकरजी ने उन्हें देखा । कुसमय जानकर उन्होंने चिन्हारी नहीं की किन्तु दूर से ही 'जय सच्चिदानन्द जग पावन । अस कहि चले मनोज नसावन'। कहकर माथ नवाया ।

अतः हनुमान जी प्रश्न करने के पश्चात् बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये अनुमान लगाने लगे ।

की तुम्ह तीनि देव मँह कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।।

जग कारन तारन भव भजन धरनी भार ।

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ।।

पहले तो हनुमान जी ने अनुमान लगाया कि आप लोग तीन देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में से तो नहीं हो । अथवा आप दोनों नर और नारायण तो नहीं हो जो दो राजकुमारों के रूप में बन में विचर रहे हो । और अन्त में हनुमान जी अनुमान से सत्य की ओर पहुँच ही गये । उन्होंने कहा कि आप सारे संसार के स्वामी तो नहीं है जो पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिये हो । वास्तव में श्रीराम (विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार) पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही मनु तन धारण किये हैं ।

भक्त द्वारा पहचान लिए जाने पर भी भगवान की आँख मिचौनी का खेल चलता ही रहा । उन्होंने कहा, "बिप्रदेव ! मैं न तो तीन देवताओं में से कोई हूँ और न तो मैं नर नारायण ही हूँ । आप कह रहे हैं कि मैं अखिल भुवन पति पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य रूप में अवतरित हुआ है । यह बात भी सत्य नहीं है । उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा-

कोसलेस दसरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए।।

राम नाम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ।।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहि हम खोजत तेही ।।

आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र निज कता बुझाई ।।

श्रीराम ने बिप्र जी से कहा- हे विप्र ! मैं अखिल भुवन पति नहीं

बल्कि कौसलदेश के राजा दशरथ का पुत्र हूँ। हम दोनों भाइयों का नाम राम और लक्ष्मण है। हम दोनों अपनी पत्नी बैदेही के साथ बन में आये हैं।

बन में राक्षस ने उनका हरण कर लिया है और हम लोग उन्हीं सीताजी की खोज कर रहे हैं। हे बिप्र ! मैंने अपना परिचय तो दे दिया अब आप बताइए कि आप कौन हैं ?

'कहहु बिप्र निज कथा बुझाई' कहते ही प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना ॥ सो सुख उमा जाइ नहि बरना ॥ हनुमान जी प्रभु को पहचानि गए और उनके चरणों में लपट गए और उन्हें जिस सुख की प्राप्ति हुयी उसका बर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीहनुमान जी इतने प्रसन्न हुए कि उनका सारा शरीर पुलकायमान हो गया। वे इतने भाव विभोर हो गए कि उनके मुख से बचन नहीं निकल रहे थे। प्रभु श्रीराम के बानप्रस्थ में इस सुन्दर स्वरूप को देखकर विह्वल हो गए। फिर धीरे-धीरे धैर्य धारण करते हुए उनकी स्तुति की और अपने स्वामी को पहचान कर हृदय से प्रसन्न हुए। इस तरह भक्त और भगवान के बीच आँख मिचौनी का खेल समाप्त हुआ। भक्त अपने भगवान के वास्तविक स्वरूप को पहचान गया।

फिर भक्त ने भगवान को उलाहना देते हुए कहा- "हे प्रभु ! मैं तो मन्द बुद्धि हूँ, मोह और माया के वश में हूँ। मैंने आपसे पूछा यह तो ठीक है, किन्तु आप ने भी नर के समान ही क्यों पूछे ! (सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।।) ऐसा कहकर व्याकुल हो प्रभु के चरणों में लपट गए। अपने वास्तविक रूप (बन्दर रूप) में प्रगट हो गए और उनका हृदय अपने स्वामी श्रीराम के प्रेम से परिपूर्ण हो गया।

हनुमान के स्वरूप में प्रगट होते ही भक्त वत्सल भगवान श्रीराम अपने भक्त हनुमान को उठाकर हृदय से लगा लिया और निज आँसुओं से सींचकर उन्हें सन्तुष्ट किया।

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।।

फिर प्रभु श्रीराम ने कहा- हे कपि ! मन में ग्लानि मत मानना। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। मुझे सभी लोग समदर्शी कहते हैं किन्तु सेवक मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। मुझे छोड़कर उसे किसी दूसरे का सहारा नहीं होता है। भगवान श्रीराम के लिए लक्ष्मण जी सबसे प्रिय सेवक हैं। उन्होंने माता-पिता, स्त्री राज्य सुख सबको त्याग कर प्रभु की सेवा का व्रत

लिया है। ऐसे सेवक से हनुमान जी को दूना कहकर प्रभु ने हनुमान जी के प्रति अपनी प्रियता का परिचय दिया है। श्रीलक्ष्मण जी तो प्रभु की ही सेवा करते हैं किन्तु श्री हनुमान जी तो प्रभु श्रीराम और श्री लक्ष्मण दोनों की ही सेवा करते हैं। इसलिए प्रभु ने श्री हनुमान जी लछिमन ते दूना प्रिय कहा। मेरे सेवक लखन है दोनों के हनुमान। ताते लछिमन दून कहि, कहयो राम यह जान। इस प्रकार प्रभु श्रीराम को अपने अनुकूल समझ कर श्री हनुमान जी अति प्रसन्न हुए और उनकी सारी व्यथा समाप्त हो गयी। वे दोनों राजकुमारों को अपने कन्धे पर बैठाकर श्री सुग्रीव के पास आये। दोनों ओर की कथा सुनाकर, अग्नि को साक्षी रखकर दोनों की मित्रता करा दी। सुग्रीव प्रभु के चरणों में सिर नवाकर मिला और प्रभु श्रीराम उसे गले से लगाकर मिले।

कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन रामचरित सब भाषा।।

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी।।

श्रीसुग्रीव जी ने प्रभु को आश्वासन दिया कि हे प्रभु ! सीताजी अवश्य मिल जायेगी। इस प्रकार आश्वस्त होकर प्रभु ने सुग्रीव जी से बन में रहने का कारण पूछा। श्री सुग्रीव जी ने बन में रहने का कारण विस्तारपूर्वक प्रभु को सुनाया। सेवक के दुख को सुनते ही दीन दयाल प्रभु श्रीराम की भुजायें फड़क उठी और उन्होंने सुग्रीव से कहा-

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहि बान।

ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान।।

प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव को आश्वासन दिया कि मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्मा और शिव के शरण में जाने पर भी उसके प्राणों की रक्षा नहीं होगी। हे मित्र ! सब चिन्ता त्याग दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूँगा। फिर भी श्रीसुग्रीव जी को पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने प्रभु से कहा- हे प्रभो ! बालि महा बलशाली है, रणधीर है। उसे मारना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े योद्धा भी युद्ध में बालि को परास्त नहीं कर सके हैं। बालि को यह वरदान था कि वह सामने से युद्ध करने वाले का आधा बल उसके अन्दर आ जाता था। महाबलशाली रावण भी बालि के काँख में बहुत दिनों तक पड़ा रहा। इसलिए सुग्रीव को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि श्रीराम बालि को एक ही बाण से मार डालेंगे।

अत: सुग्रीव जी ने प्रभु श्रीराम के बल की परीक्षा एवं अपने विश्वास को दृढ़ करने के लिए दुन्दुभि राक्षस की हड्डियाँ और ताल के वृक्ष दिखलाये। ऐसी कथा आती है कि दुन्दुभि नामका राक्षस सर्पयोनि में बास करता था। बालि ने उसका बध कर पहाड़ पर फेंक दिया था। साँप की गति तो टेढ़ी-मेढ़ी होती ही है। अत: उसकी अस्थियों से ही उस ताल में टेढ़े मेढ़े रूप में वृक्ष उग आये थे। बाण की गति तो सीधी होती है। वृक्ष टेढ़े मेढ़े गति में थे। अत: एक ही बाण से उनको मारकर गिराना असम्भव होता है। इसलिए सुग्रीव ने उस ताल के वृक्षों को गिराने के लिए प्रभु से निवेदन किया।

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढ़हाये।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधव इन्ह भइ परतीती।।

सुग्रीव ने श्रीराम को दुन्दुभि अस्थि और ताल दिखलाये और प्रभु ने बिना प्रयास के ही उन्हें ढहा दिया। श्रीरघुनाथ जी के अमित बल को देखकर सुग्रीव को यह विश्वास हो गया कि श्रीराम बालि का बध अवश्य करेंगे। वे बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाने लगे। वे प्रभु को पहचान कर अति प्रसन्न हुए।

अरण्यकाण्ड तक प्रभु के कृपा एवं माधुर्य गुण का ही परिचय प्राप्त हुआ था किन्तु किष्किन्धा काण्ड में उनके तेज और शौर्य गुण का परिचय भक्तों को प्राप्त हुआ। भगवान को पहचानने के बाद तो सुग्रीव ने कहा-

अब प्रभु कृपा करहु एति भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती।।

उसने कहा-हे प्रभु सुख संपत्ति, परिवार और बड़प्पन ये सब रामभक्ति में बाधक हैं। अत: इन सबको छोड़कर अब आपकी सेवा और भजन ही करूँगा। सुग्रीव की विरागयुक्त बातें सुनकर प्रभु हँसे और उन्होंने कहा- 'हे सखा! ऐसा ही होगा'। किन्तु मैंने जो कहा है कि बालि को एक ही बाण में मारूँगा वह झूठा नहीं होगा। ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम सुग्रीव को साथ लेकर चल पड़े और उसे बालि के पास युद्ध करने के लिए भेजा। भगवान का बल और सहारा पाकर सुग्रीव ने बालि के पास गरज कर युद्ध के लिए ललकारा। सुग्रीव की गर्जना सुनकर बालि क्रोध में भरकर युद्ध के लिए दौड़ा किन्तु उसकी पत्नी तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहिकर चरन नारि समुझावा।।

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ बन्धु तेज बल सीवा ।

कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु.जीति सकहि संग्रामा ।।

बालि ने यह विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी कि सुग्रीव जैसा भीरू व्यक्ति आज अपनी ओर से युद्ध की चुनौती देने का साहस कैसे कर रहा है ? बालि बड़ा बलशाली और अभिमानी था किन्तु किसी को युद्ध करने की चुनौती कभी नहीं देता था । किन्तु यदि उसे किसी की ओर से चुनौती दी जाती थी तो वह उसे सहन नहीं कर सकता था और तुरन्त युद्ध के लिए चल पड़ता था । सुग्रीव के ललकारने पर उसने ऐसा ही किया । किन्तु उसकी बुद्धिमती पत्नी इस विषय में बहुत सजग थी । उसने इस बीच घटित होने वाली घटनाओं का पता पा लिया था । इसलिए वह बालि को सचेत करने का प्रयत्न करती है । उसने स्पष्ट शब्दों में बालि का ध्यान समस्या की गम्भीरता की ओर आकृष्ट किया । पतिदेव ! सुग्रीव की जिनसे मित्रता हुयी है वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं । अयोध्या नरेश के पुत्र राम और लक्ष्मण काल को भी जीतने में समर्थ हैं ।

बालि बिनम्रता और विवेक से भरी हुयी अपने पत्नी के इस वाणी को अस्वीकार कर देता है । तारा को उत्तर देते हुये उसे भीरु कहकर सम्बोधित करता है इस शब्द के द्वारा वह तारा की भर्त्सना करता हुआ प्रतीत होता है । उसका तात्पर्य यह था कि मुझ जैसे बीर की पत्नी को ऐसा भीरू नहीं होना चाहिये । बालि की दृष्टि में भय एक दुर्गुण है और अभय सर्वतोकृष्ट गुण है । किन्तु वह अहंकारजन्य अभय और विवेक से उत्पन्न अभय के अन्तर को नहीं जानता है । आत्मा की नित्यता के ज्ञान से उत्पन्न वाली अभयवृत्ति ही सच्ची अभयवृत्ति है । किन्तु आनित्य शरीर को सर्वशक्तिमान मानकर जिस अभयवृत्ति का जन्म होता है वह वस्तुतः अहंकार मात्र है । बालि के जीवन में यह अहंकार भरपूर मात्रा में विद्यमान था । इसलिए वह तारा को यह समझाने का प्रयास करता है कि उसकी तुलना में उसका ज्ञान कहीं ऊँचा है । तारा ने श्रीराम के अतुलित सामर्थ्य का वर्णन किया था । बालि ने इससे आगे बढ़कर उनके ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया । वह कहता है, "हे भीरु प्रिया! श्रीराम ईश्वर होने के कारण समदर्शी हैं । इसलिए उनके द्वारा सुग्रीव का पक्ष लिए जाने की कोई सम्भावना नहीं है । पर वे यदि कदाचित मुझे मार ही दे तों मैं सनाथ हो जाऊँगा ।

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।
जौ कदाचि मोहिं मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ।।

साधारण दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि बालि एक उच्चकोटि का ज्ञानी था । किन्तु बालि की मन:स्थिति पर विचार करने से यह स्पष्ट हो ज़ाता है उसका यह ज्ञान भी अहंकारजन्य भ्रान्तियों से भरा हुआ है । केवल किसी की वाणी को दोहरा देना ही ज्ञान नहीं है । मुख्य प्रश्न यह है कि इस ज्ञान का सम्बन्ध अनुभूति से है अथवा यह केवल बाहर से थोपा गया है । राम के जिस रूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये योगियों द्वारा समाधि में प्रविष्ट होने का प्रयास किया जाता है उस ज्ञान को बालि जीवन में किसी परिवर्तन या साधना के ही पा लेने का दावा करता है । उसने यह भुला दिया कि समदर्शित्व ही नहीं न्याय परायणता और कर्मफल दातृत्व भी उस परमात्मा के गुण हैं । ईश्वर को जान लेने का फल यह है कि उसके प्रति भक्ति और प्रीति का उदय हो जाय । किन्तु बालि सेवा और प्रीति के मार्ग से भाग खड़ा होता है । वह केवल स्वयं को यह भुलावा देकर सन्तुष्ट हो जाता है कि वह इससे भी घाटे में नहीं रहेगा इसलिए वह तारा की प्रेरणा को अस्वीकार करते हुए सुग्रीव से लड़ने के लिए चल पड़ता है ।

भिरे उभौ बाली अति तर्जा । मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ।।
तब सुग्रीव विकल होइ भागा । मुष्टि प्रहार वज्र सम लागा ।।

संघर्ष के प्रथम दौर में बालि सुग्रीव को पराजित करने में सफल होता है, इससे उसका अहंकार और भी अधिक बढ़ जाता है । वह न तो विजेता बनकर किष्किन्धा ही लौटता है और न ही सुग्रीव को मारने की चेष्टा करता है । वह स्थिर भाव से रुके रहकर प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई देता है । दूसरी ओर बालि के प्रहार से संत्रस्त सुग्रीव भी राम के पास लौट जाते हैं । उन्हें आश्चर्य और दु:ख था कि श्रीराम ने इस युद्ध में हस्तक्षेप क्यों नहीं किया ? बालि वध की प्रतीज्ञा करते हुए भी प्रभु श्रीराम तटस्थ द्रष्टा क्यों बने रहे ?

प्रथम संघर्ष में प्रभु श्रीराम ने तटस्थता क्यों दिखलाई ? इस तटस्थता के द्वारा उन्होंने अपने समदर्शित्व का ही परिचय दिया । बालि ने तारा के समक्ष उनके समदर्शित्व का वर्णन किया था । इसलिए प्रभु ने पहले संघर्ष में बालि का बध न कर उसके भाव का समादर किया । यदि प्रथम संघर्ष में ही श्रीराम बालि का बध कर देते तो सुग्रीव की आत्म प्रवचना की वृत्ति

और भी अधिक बढ़ जाती । तब वे यही कहते कि मैं पूरी तरह निष्काम था, यह संघर्ष तो मैंने अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु श्रीराम की प्रतिज्ञापूर्ति के लिए किया है । प्रभु को पहचानने के बाद सुग्रीव ने कहा था-

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिन राती।

सुग्रीव पूर्ण वैराग्य की स्थिति में बालि से युद्ध नहीं करना चाहते थे । उन्हें यह भ्रम था कि यह युद्ध मैं श्रीराम की प्रतिज्ञापूर्ति के लिए कर रहा हूँ । इसलिए युद्ध के प्रथम दौर में भगवान ने तटस्थता का परिचय देते हुए बालि के समदर्शिता के भाव का समादर किया और सुग्रीव के भ्रम का निवारण किया ।

एक रूप तुम भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ ।।

कहकर प्रभु ने सुग्रीव को सन्तुष्ट किया । प्रभु ने सुग्रीव के शरीर को अपने कर-कमलों से स्पर्श कर उनकी समस्त पीड़ा हर ली । इसके पश्चात् श्रीराम सुग्रीव को फूलों की माला पहनाकर युद्ध करने के लिए भेजते हैं ।

मेली कंठ सुमन कै माला । पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।।

पुनि नाना विधि भई लराई । विटप ओट देखहिं रघुराई ।।

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि ।

मारा बाली राम तब हृदय माझ सर तानि ।।

श्रीराम का वाण लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है किन्तु थोड़े ही समय पुनः उठकर बैठ जाता है । बालि पर प्रहार करने के बाद श्रीराम उसके समक्ष जाकर खड़े हो जाते हैं । बालि प्रभु श्रीराम को देखकर अपना जन्म सफल मान लेता है और बार-बार प्रभु के रूप (स्याग गात सिर जटा बनाएँ । अरुन नयन सर चाप चढाए । को उनके चरणों में चित लगा निहारता है । यद्यपि बालि के हृदय में भगवान के प्रति अगाध प्रेम है फिर भी वह कठोर वचनों से उन पर आरोप लगाता है । वह प्रभु से पूछता है, "हे प्रभु ! आपका अवतार तो धर्म की रक्षा करने के लिए हुआ है, किन्तु आपने मुझे छिपकर ब्याधि की तरह क्यों मारे ? आप तो समदर्शी हैं । फिर मैं आपका बैरी और सुग्रीव आपके लिए प्यारा कैसे हो गया । आइये इस प्रसंग पर थोड़ा विचार करें ।

भगवान श्रीराम युद्ध में असुरों के संहार के लिए ऐसे वाण का प्रयोग

करते थे कि तत्काल उनकी मृत्यु हो जाती थी । बालि बध में भी वे ऐसे बाण का प्रयोग करते कि बालि की मृत्यु भी तुरन्त हो जाती । लेकिन बालि बध में वे ऐसे बाण का प्रयोग करते हैं जो बालि के हृदय में बिंध जाता है। उससे बालि की तत्काल मृत्यु नहीं होती है । प्राण का परित्याग करने से पहले उसका प्रभु से एक लम्बा वार्तालाप होता है । श्रीराम को अपने सामने देखते ही बालि उन पर आरोपों की झड़ी लगा देता है । वह सबसे पहले यह स्वीकार करता है कि उसकी दृष्टि में राम एक राजकुमार अथवा व्यक्ति नहीं है । वे धर्म की रक्षा के लिए अवतरित साक्षात् ईश्वर हैं । पर इसके पश्चात् उसका आरोप यह था कि जो स्वयं धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुआ है उसे अपने जीवन में धर्माचरण का पालन करना चाहिए । श्रीराम के द्वारा छिपकर बाण का प्रहार किया जाना उसकी दृष्टि में धर्म के अनुकूल नहीं था। अत: उसका प्रथम आक्षेप इसी विषय में था । दूसरा आक्षेप उसका श्रीराम के व्यवहार की विषमता को लेकर था । सारे शास्त्र ईश्वर के समत्व का प्रतिपादन करते हैं, ऐसी स्थिति में वह राम के ऐसे व्यवहार की आशा नहीं रखता था । इसलिए वह जानना चाहता था कि उसमें और सुग्रीव में भेद क्यों किया गया ? एक को मित्रता और दूसरे को बध का पात्र क्यों माना गया ?

प्रभु श्रीराम ने बालि के आरोपों का उत्तर इस प्रकार दिया ।

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधे कछु पाव न होई ।।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना । नारि सिखावन करसि न काना ।।
मम भुजबल आश्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी ।।

श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा जो उत्तर दिया गया उसके सूत्र बालि के आरोप में विद्यमान थे । यदि उन्हें एक राजकुमार के रूप में स्वीकार करते हुए आरोप लगाये होते तो बालि के आरोप अत्यन्त शक्तिशाली होते । युद्ध धर्म की एक मर्यादा है और उसे प्रत्येक योद्धा को स्वीकार करना चाहिए युद्ध में किसी पर छिपकर प्रहार करना मर्यादा के प्रतिकूल है । इसलिए श्रीरामचन्द्र का बालि को छिपकर मारना मर्यादा का अतिक्रमण था पर बालि ने उन्हें ईश्वर मानकर अपने ही तर्कों को अपने विरुद्ध प्रयुक्त किये जाने का अवसर दे दिया । राम यदि ईश्वर हैं तो मानवीय मर्यादायें उनके लिए

बाध्यता नहीं बन सकती। ईश्वर सृष्टि का सृजन और पालन ही नहीं बल्कि उसका संहार भी करता है। काल के कोदंड पर समय सीमा का बाण चलाता हुआ वह निरंतर संहार में सन्नद्ध है। अत: अगणित जीवों का छिपकर संहार करने वाला ईश्वर यदि बालि पर छिपकर प्रहार करता है, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। "धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं" बालि के इस कथन की मान्यता स्वीकार करते हुए प्रभु श्रीराम स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं कि मैंने अवतार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही तुम्हें मृत्युदंड दिया है। तुम्हारा आचरण धर्म के प्रतिकूल था, इसलिए तुम्हें दंड देना भी अनिवार्य था। दंड और युद्ध में कोई साम्य नहीं है। युद्ध के विधान दंड प्रक्रिया पर लागू नहीं होते हैं। इसलिए बालि के तर्क के ही आधार पर, "ताहि वधे कुछ पाप न होई" कहकर प्रभु अपने कार्य को युक्त संगत सिद्ध कर देते हैं। प्रभु ने बालि से कहा, 'सुग्रीव को मेरे आश्रित जानकर भी तुमने अभिमानवश उसे मार डालने का प्रयत्न किया। अपनी पत्नी के समझाने पर भी तुमने उसकी अवहेलना कर अपने अभिमान का ही परिचय दिया। इसी अभिमान के कारण तुम अपनी त्रुटियों को स्वीकार करने के स्थान पर मुझ पर झूठे आरोप लगा रहे हो।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।

मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।।

श्रीरामचन्द्र की इस बाणी को सुनते ही बालि का अभिमान विनष्ट हो जाता है और इसके बाद वह अत्यन्त विनम्र शब्दों में त्रुटियों को स्वीकार करता हुआ कृपा की याचना करता है।

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।

प्रभु अबहूँ मै पापी अंतकाल गति तोरि।।

बालि के इन वाक्यों का भगवान राम पर असाधारण प्रभाव पड़ता है और वे बालि वध की अपनी प्रतिज्ञा भुलाकर उसके मस्तक को कर कमल से स्पर्श करते हुए उससे कहते हैं, 'मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर देना चाहता हूँ, प्राण रक्षा की बात तुम स्वीकार करो। किन्तु प्रभु के साक्षात् दर्शन से बालि में इतना परिवर्तन आ चुका था कि वह अत्यन्त विनम्रता और भावुकता भरे स्वर में इस लाभ को अस्वीकार कर देता है। बालि ने कहा, 'हे कृपा निधान सुनिये- मुनिगण अनेकों जन्म में साधना करते रहते हैं, फिर

भी अन्तकाल में उनके मुख से राम नहीं निकलता। जिनके नाम के बल से शंकर जी काशी में सबको समान रूप से अविनाशी गति देते हैं, वे श्रीराम स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गये हैं, हे प्रभु ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ पड़ेगा। अतः वह प्रभु से भाव भरे स्वर से अनुरोध करता है कि 'प्रभु अपनी करुणाभरी दृष्टि मुझ पर डालें और मेरे रुचि के अनुसार मुझे वर देवें। वह चाहता है कि उसके कर्म के अनुरूप उसे जन्म प्राप्त होते रहे। किन्तु वह कहीं भी जन्म क्यों न ले मन, बचन, कर्म से प्रभु के चरणों में उसकी प्रीति बनी रहे। वह अपने पुत्र अंगद को भी शरणागति और समर्पण के पथ पर अग्रसर होता हुआ देखना चाहता है। इसलिए कल्याणप्रद प्रभु से वह अनुरोध करता है, 'हे प्रभु ! यह मेरा पुत्र विनय और बल में मेरे समान है इसे स्वीकार कीजिए। हे देवताओं और मनुष्यों के नाथ ! बाँह पकड़कर इसको अपना दास बनाइए।"

अब नाथ करि करुना विलोकहु देहु जो वर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए।।
राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग।।

इस प्रकार करुणामय प्रभु ने बालि को अपने धाम भेज दिया। "राम बालि निज धाम पठावा।"

प्रभु श्रीराम ने किष्किन्धाकाण्ड में अपनी दयालुता, कृपालुता, भक्तवत्सलता आदि गुणों के साथ-साथ अपने तेज और सबलता का भी परिचय दिया है।

किष्किन्धा में सबलता देखि लेहु तत्काल।
मारेउ एके वान ते सप्त ताल अरु वाल।।

सियावर रामचन्द्र की जै।।

●

साहिब

सुन्दर लंका काण्ड में प्रभु साहिबी देखात ।
दीन्ही राज विभीषनहि करि रावन को घात ।।

बालि के बध के पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव को किष्किन्धा के राज्य पर आरूढ़ किया और बालि पुत्र को युवराज के रूप में प्रतिष्ठित किया । वहाँ से ही उनकी साहिबी का संकेत मिलने लगा । सुन्दरकाण्ड के प्रथम श्लोक में ही गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम की भूपाल चूड़ामणि कहकर वन्दना की है । वन्देऽहं करुणाकरं रघुवर भूपाल चूड़ामणिमा किष्किन्दा का राजा सुग्रीव उनके सचिव श्री हनुमान जी एवं सारी बानरी सेना प्रभु की सेवा के लिए प्रस्तुत हो जाती है । सुन्दरकाण्ड की कथा प्रारम्भ हो जाती है । 'जामवंत के वचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।' जामवंत जी के निर्देश पर श्री हनुमानजी भगवती सीता की खोज में चल पड़ते हैं । 'सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर । कोतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर'। प्रायः लोगों में यह जिज्ञासा होती है कि श्रीरामचरितमानस के पंचम सोपान का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों पड़ा । एक भक्त का भाव है ।

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरी कथा ।
सुन्दरे सुन्दरो राम सुन्दरे किम् न सुन्दरम् ।।

सुन्दरकाण्ड में छः बार सुन्दर शब्द आया है ।

सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ताऊपर ।।
स्याम सरोज दाम सम सुन्दर । प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ।।
तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुन्दर ।।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुन्दर फल रुखा ।।
सावधान मन करि पुनि संकर । लागे कहन कथा अति सुन्दर ।।

हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भए सुन्दर सुभ नाना ।।

इस प्रकार सुन्दर काण्ड में सब सुन्दर ही सुन्दर है । इस काण्ड में श्री हनुमान जी का सुन्दर चरित्र है । इस काण्ड में रामदूत श्री हनुमान राम नाम का सहारा लेकर (राम नाम अंकित अति सुन्दर) भक्ति स्वरूपा माँ भगवती सीता की खोज करते हैं । सीता के अन्वेषण के पश्चात् वे सुन्दर फल खाते हैं । राम काज में उन्हें सफलता मिलती है । पश्चात् वे भूख का बहाना कर सुन्दर फल खाते हैं । इसी काण्ड में शंकर सावधान मन से अति सुन्दर कथा कहते हैं । अतः इस काण्ड का सुन्दरकाण्ड नाम यथोचित है ।

सुन्दरकाण्ड की एक और विचित्रता है । सुन्दरकाण्ड में गोस्वामी जी चौपाई से काण्ड का आरम्भ करते हैं । तो सुन्दरकाण्ड में चौपाई से क्यों चले?

छः काण्डों के आदि में दोहा के हैं स्तम्भ ।

फिर चौपाई से क्यों हुआ सुन्दर का आरम्भ ।।

किसी कवि ने इस प्रश्न का उत्तर एक दोहा में दिया है ।

चौपाई तो चलति है दोहा बने विराम ।

ताते तुलसी नहिं कियो सुन्दर में विश्राम ।।

सुन्दरकाण्ड रामचरितमानस का हृदय है । इस काण्ड में अतुलित बल धाम पवनसुत का अति पावन सुन्दर चरित्र है । श्री हनुमानजी की लंका यात्रा, श्री सीताजी की खोज, लंका दहन, विभीषण की शरणागति आदि महत्वपूर्ण कथाएँ इसी काण्ड में है । साहित्यिक दृष्टि से वीररस, करुण रस, भक्तिरस की रसानुभूति इसी काण्ड में होती है । श्री हनुमानजी विशाल रूप धारण कर समुद्र लाँघते हैं । सिहिनी लंकिनी आदि महाराक्षसिनियों का वध करते हैं, और अन्त में सुरसा का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं । देवताओं द्वारा भेजी गयी सुरसा श्री हनुमान जी के बल-बुद्धि की परीक्षा लेती है और श्री हनुमान जी पूर्णरूपेण उस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मसक रूप में लंका में प्रवेश करते हैं ।

राम काजसब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान ।

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ।।

मसक समान रूप कपिधरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ।।

श्री हनुमानजी मच्छर के समान रूप धरकर लंका में प्रवेश नहीं करते

हैं । मसक का तात्पर्य यहाँ विलाव से है । श्री हनुमानजी विलाव (विलार) के समान रूप धरकर लंका में प्रवेश करते हैं । अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विलाव बड़ा ही चालाक और साहसी जीव है । इसलिए मच्छर की अपेक्षा मसक का तात्पर्य विलाव अधिक उपयुक्त लगता है । सुमुरि नरहरी में भी प्राय: लोग नरहरी का तात्पर्य नरसिंह भगवान से लेते हैं । श्री हनुमानजी ने नरसिंह भगवान का स्मरण क्यों किया ? हरि वानर को कहत हैं नर स्वरूप श्रीराम, ताते नर को सुमिरि हरि कियो लंकपुर धाम । दूसरा भाव यह भी है ।

लंका में नरसिंह की मूरति हती विशाल ।
इन्द्रहिं लायो जीतकर मेघनाथ उत्ताल ।।
मेघनाथ उत्ताल सोई मूरति मन भावन ।
दियो विभीषण भक्त जान पूजन हित रावन ।।

इसलिए श्री हनुमानजी लंका में नरसिंह भगवान का स्मरण कर ही प्रवेश करते हैं । लंका में प्रवेश के पश्चात् मन्दिर मन्दिर प्रतिकर शोधा । श्री हनुमान जी विभीषण की कुटिया में पहुँचते हैं ।

भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मंदिर तँह भिन्न बनावा ।।

विभीषण के भवन के समक्ष तुलसी का पौधा देख श्री हनुमान जी अति प्रसन्न हुये । उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि इस निशाचर नगरी में एक सज्जन का निवास कैसे हो रहा है ? प्रात: काल होते ही श्री विभीषण जी श्री राम नाम का स्मरण करते हुए उठे । एहि सन हठि करिहउ पहिचानी । साधु ते होहि न कारज हानी । ऐसा विचार कर श्री हनुमानजी विप्र रूप में श्री विभीषण जी से मिले । विभीषण द्वारा उन्हें माँ जानकी का पता लगा । अत: श्री हनुमानजी विभीषण के निर्देशानुसार अशोक बाटिका में गये । जुगुति विभीषन सकल सुनाई चले पवन सुत बिदा कराई । अशोक बाटिका में माँ जानकी को अति दीन अवस्था में देखकर श्री हनुमान जी अत्यन्त दु:खी हुये । अपना छोटा सा रूप बनाकर 'तरु पल्लव मह रहा लुकाई'। वृक्ष पर अपने वानर स्वभावानुसार पत्तों में छिप कर बैठ जाते हैं । उसी समय रावण आता है और नाना प्रकार का भय दिखलाकर चला जाता है । सीताजी श्रीराम के बिरह में व्याकुल होकर अनेक प्रकार से बिलाप करती हैं । श्री हनुमानजी से उनकी विरहाकुल व्यग्रता देखी नहीं जाती और वे तुरन्त

वृक्ष से ही मुद्रिका गिरा देते हैं ।

कपि कर ह्रदय विचार दीन्दह मुद्रिका डारि तब ।

राम नाम अंकित अति सुन्दर मुद्रिका को देखकर सीताजी को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे प्रसन्न भी हुईं और दुखी भी । इस तरह आश्चर्य हर्ष और विषाद विपरीत भावनाओं के होने से वे ह्रदय से व्याकुल हो गयी ।

जीति को सकइ अजय रघुराई । माया से असि रचि नहि जाई ।।

सीता मन बिचार कर नाना । मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ।।

अँगूठी यहाँ कैसे आई ? ऐसा सोचकर आश्चर्य हुआ, अँगूठी देखते ही उसे अपने हाथ में लेकर सुखद स्मृतियों में डूब गयीं । इससे प्रसन्नता हुई । अँगूठी श्री रामचन्द्रजी से बिलग कैसे हुई, ऐसा विचारकर दुःखी हो रही हैं । श्री रघुनाथजी तो सदा अजेय हैं, और माया से ऐसी अँगूठी बनाई नहीं जा सकती । सीताजी मन में अनेक प्रकार से विचार कर रही थी । इसी समय श्री हनुमानजी श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करने लगे ।

राम गुण गान सुनते ही सीताजी के सब दुःख भाग गये । उन्होंने कहा- 'जिसने यह सुन्दर कथा कही है, वह प्रगट क्यों नहीं होता ?' तब हनुमान जी उनके पास चले गए । उन्हें देखकर सीताजी मुँह फेरकर बैठ गयीं और उनके मन में आश्चर्य हुआ ।

श्री हनुमानजी ने कहा, 'हे माता जानकी ! मैं श्रीराम जी का दूत हूँ । करुणानिधान की शपथ खाता हूँ । हे माता ! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ । श्रीराम जी मुझे आपके लिए यह निशानी दी है ।'

रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ।।

यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिधानी ।।

श्री सीताजी ने श्रीराम का नाम करुणानिधान रक्खा था । इस मुद्रिका का श्री सीताजी के साथ विशेष सम्बन्ध था । गुरु बशिष्ठ की पत्नी ने सीताजी को यह अँगूठी मुख दिखाई के रूप में दिया था जो बनवास के समय उनके साथ थी । इसी अँगूठी को सीताजी ने श्रीराम को केवट को उतराई देने के लिए दिया था । किन्तु केवट ने उतराई नहीं ली । तभी से यह अँगूठी श्रीराम के पास थी, जिसे उन्होंने श्री हनुमानजी को लंका जाते समय दिया था । श्री हनुमान जी ने माँ जानकी को श्रीराम और श्री लक्ष्मण

का कुशल समाचार सुनाकर उन्हें धीरज दिया और श्रीराम का स्मरण करने के लिए कहा । श्रीराम की प्रभुता का ध्यानकर कायरता छोड़ने को कहा ।

कह कपि हृदय धीर धरु माता । सुमिरि राम सेवक सुख दाता ।।

उर आनहु रघुपति प्रभुताई । सुनि मम बचन तजहु कदराई ।।

श्री हनुमानजी ने बार-बार श्री सीताजी चरणों में सिर नवाया और हाथ जोड़कर कहा, 'हे माता अब मैं कृतार्थ हो गया । आपका आशीर्वाद अमोघ है यह बात प्रसिद्ध है'। इसके पश्चात् पवन सुत बाटिका में फल खाये । राक्षसों का संहार कर लंका जलाया ।

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।

जनक सुता के आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि ।।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ।

चूड़ामनि उतार तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ।।

श्री हनुमानजी जानकी जी को बहुत प्रकार से धीरज दिये और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्रीराम जी के पास पुनः चले गये ।

श्री सीताजी ने चूड़ामनि उतारा क्यों ? क्योंकि प्रियतम के वियोग में चूड़ामनि भार हो रहा था ।

प्यारे प्रीतम राम को रहे जहाँ निज हाथ ।

सती सिया सोचन लगी रहे तहाँ मम हाथ ।।

चूड़ामणि के विषय में एक कवि ने अपना भाव इस प्रकार व्यक्त किया है ।

जब बरात मिथिलाते आई । बासुकि ने जिन न्योत पठाई ।।

देवराज तिनके गृह आये । चूड़ामणि कन्या पहिनाये ।।

देत समय अस बचन सुनावा । सो सुनि सबहि बहुत सुख पावा ।।

चूड़ामणि जिनके गृह रहिहैं । तिनको रण कोइ जीत न पइहैं ।।

दशरथ ने सीतहि पहिनाई । सोइ चूड़ामणि मुख देखराई ।।

सीता सोचत मन मंह लाई । चूड़ामणि संगहि संग आई ।।

चूड़ामणि लंका में रहिहैं । तो रावण अजेय होइ जइहैं ।।

तेहि कारण कवि ने लिख दीन्हा । चूड़ामणि उतार तब दीन्हा ।।

श्रीराम ने चूड़ामणि को हृदय से लगा लिया और हनुमानजी से कहा, "हे पुत्र मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता"। सुरत्राता प्रभु बार-बार हनुमान जी की ओर देख रहे हैं, नेत्र में प्रेमाश्रु का जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है। प्रभु के बचन सुनकर श्री हनुमानजी हर्षित हो गये। हे भगवन! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो कहते हुए श्रीराम जी चरणों में गिर पड़े। हनुमान जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठा लिया।

प्रभु तरु तर कपि डार पर तेइ कियो आपु समान ।

तुलसी कबहूँ न राम सो साहिब सील निधान ।।

* * * *

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जबते जारि गयउ कपि लंका ।।

वहाँ (लंका में) जबसे हनुमान जी लंका जलाकर गये तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। दूतियों से नगर निवासियों के बचन सुनकर मन्दोदरी बहुत ही ब्याकुल हो गयी। वह एकान्त में हाथ जोड़कर अपने पति (रावण) के चरणों में लगी और नीतिरस में पगी हुयी वाणी बोली- 'हे प्रियतम ! श्रीहरि से विरोध छोड़ दीजिए, और यदि भला चाहते हैं तो अपने मंत्री को बुलाकर उनके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए'। अभिमानी रावण अपनी पत्नी की बात सुनकर हँसा। हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता बढ़ाकर सभा में चला गया।

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्ट करि रहहु ।।

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाही । नर बानर केहि लेखे माहीं ।।

अवसर जानि विभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहि नावा ।।

विभीषण जी ने रावण को सम्मति देते हुए ब्रह्म, अनामय अज, भगवंत आदि विशेषणों से श्रीराम के ऐश्वर्य, कृपालुता, शील आदि गुणों वर्णन किया तथा गो-द्विज-धेनु-हितकारी और जनरंजन आदि शब्दों से श्रीराम जी के विरद की व्याख्या की। उसने कहा- राम प्रण तारति भंजन है, अतः वैदेही को देकर उनकी शरण में जाना ही कल्याणकर है। साथ ही यह बतलाया कि पुलस्त्य मुनि ने भी ऐसी ही अनुमति दी है। विभीषण जी

इस सम्मति को प्रवीण मंत्री माल्यवान ने भी उपादेय बतलाया । परन्तु रावण ने इस बात का मानना तो दूर रहा, उलटे क्रोधित होकर दोनों को सभा भवन से निकाल देने की आज्ञा दी । इस पर माल्यवान तो अपने घर चला गया, परन्तु विभीषण जी ने साधुवृत्ति के अनुसार मानापमान को समान समझते हुए रावण का पैर पकड़ कर बिनती की । मेरा दुलार रख लीजिए और श्री सीताजी को श्रीराम को अर्पण कीजिए । इसी में आपका हित है । श्री विभीषण जी के पुनः प्रार्थना करने पर रावण क्रोधित हो उठा और अनेक दुर्वचन कहते हुए उसने उन पर पाद प्रहार किया और बोला-

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कह नीती।।

विभीषण जी को 'मम पुर वसि तपसि पर प्रीती' ये वचन सहन नहीं हो सके, क्योंकि भक्त को अपना अपमान तो सहन हो सकता है पर अपने इष्ट के प्रति कहे हुए अपमान वचन उनके मर्म को बेध डालते हैं ।

ममपुर से रावण ने अपने को सम्राट और विभीषण को अपने राज्य में बसने वाली साधारण प्रजा सूचित किया एवं तपसिन्ह शब्द से श्रीराम लक्ष्मण को गृहादि से हीन अनिकेतन बतलाकर यह सूचित किया कि 'तू भी बिना घर-द्वार का बन जा ।

इसलिए विभीषण जी के अन्तःकरण में यह स्फुरण हुयी कि देखें यह पुर अब वास्तव में किसका ठहरता है । जिस प्रभु का समस्त जगत है उसे गृहहीन बताना और अपने को राजा मानना बड़े अभिमान की बात है । यदि भगवान की बिभूति सत्य है तो निश्चय ही भगवान का दास ही इस प्रसाद का अधिकारी बनेगा । इसी वासना के अनुसार विभीषण 'सचिव संग लै नभ पथ गयऊ' अन्यथा भगवान के शरण में जाने के समय सचिव को साथ लेने की क्या आवश्यकता थी ?

श्री विभीषण सचिव सहित श्रीराम के शरण में चले गए । शरणागत वत्सल श्रीराम विभीषण को लंकेश का सम्बोधन करते हुए अपने शरण में ले लेते हैं । सुनु लंकेस सकल गुन तोरे । ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे । प्रभु की अमृतमय वाणी सुनकर विभीषण अघाते नहीं है । वे बार-बार श्रीराम के चरण कमलों को पकड़ते हैं । प्रभु का अपार प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं है । विभीषण जी ने कहा, "हे देव ! चराचर जगत के स्वामी, शरणागत के रक्षक ! हे सबके हृदय के भीतर को जानने वाले ! सुनिये, मेरे हृदय में

पहले कुछ वासना थी वह प्रभु के चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गयी। हे कृपालु ! अब तो शिवजी के मन को प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए। एवमस्तु कहकर प्रभु ने तुरन्त समुद्र का जल मँगाया और विभीषण का राजतिलक कर दिया।

जो संपति सिव रावनहि दीन्ह दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा विभिषहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

इस तरह प्रभु श्रीराम ने बचन से श्री विभीषणजी को लंका का राजा बना दिया। इसमें प्रभु की साहिबी का ही दर्शन होता है।

विभीषण के राजतिलक के पश्चात् लंका पर चढ़ाई की योजना बनती है। नल-नील द्वारा समुद्र पर सेतु का निर्माण होता है।

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा।।
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र विसेषी।।
तहँ तरु किसलय सुमन सुहास। लछिमन रचि निज हाथ उसाए।।
ता पर रुचिर मृदुल मृग छाला। तेहि आसन आसीन कृपाला।।

इस प्रस्तुत प्रसंग में इहाँ शब्द कथान्तर की सूचना देता है। इसके पहले रावण के यहाँ का समाचार इस प्रकार कहा गया है-

सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास।।

इसके पश्चात् अब श्री रामादल का समाचार बर्णन किया जाता है कि इधर सुबेल गिरि पर श्री रघुवीर सेना सहित बड़ी भीड़ के साथ उतरे। इहाँ शब्द में भी एक रहस्य है। श्री तुलसीदास जी जब रावण के समाचार वर्णन करते हैं तो 'उहाँ' शब्द का प्रयोग करते हैं। जैसे-

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका।।
उहाँ अर्धनिसि रावन जागा। निज सारथि सन खीझन लागा।।

और जब श्रीरघुनाथजी का प्रसंग उठाते हैं तो इहाँ शब्द आरम्भ करते हैं। यथा-

इहाँ सुवेल सैल रघुवीरा। इहाँ प्रात जागे रघुराई। इहाँ राम

अंगदहि बोलावा । इत्यादि ।

इहाँ शब्द से गोस्वामीजी श्रीराम जी के साथ अपना निजत्व सूचित करते हैं । तात्पर्य यह है कि यहाँ- अपनी ओर यह समाचार है और वहाँ रावण के दल का ऐसा समाचार है । सुबेल शैल वही पर्वत है जिस पर चढ़ कर हनुमान जी ने लंका को देखा था । सैल विसाल देखि एक आगे । ता पर धाइ चढ़उ भय त्यागे । सुबेल-शैल के विषय में कथा है कि वहाँ काल का पहरा था, अतः उसके भय से वहाँ कोई फटकने नहीं पाता था । किन्तु श्रीहनुमान जी भय त्याग कर उस पर्वत पर चढ़ गये । इसका कारण था कि उनमें प्रभु का बल था, जो काल को भी ग्रास बना सकता है । हुआ भी वही, श्रीहनुमान जी ने काल को परास्त कर वहाँ से उसी समय उसे यमपुरी वापस भेज दिया । परन्तु इस रहस्य को लंका निवासियों ने नहीं जाना । श्रीराम जी के ऐश्वर्य की आश्चर्य घटना सुबेल-गिरि पर उतरना भी था । इसका उल्लेख मन्दोदरी और प्रहस्त ने रावण को समझाते समय किया है । प्रहस्त ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-

जेहिं बारीस बँधायउ हेला । उतरेउ सेन समेत सुबेला ।
सो मनु मनुज खाब हम भाई । बचन कहहिं सब गाल बजाई ।।

तात्पर्य यह है कि रावण ! राक्षस जो तुमसे गाल फुलाकर कहते हैं कि हम मनुष्यों को पकड़ कर खा जायेंगे, सो तुम अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं हैं, उन्होंने समुद्र को बँधवाने का दुस्साध्य कार्य किया है और सेना सहित आकर उस सुबेल गिरि पर डेरा डाल दिया है जहाँ जाने की बात पर राक्षस भी भय से काँपने लगते हैं । उस सुबेल गिरि का एक भाग जो सबसे ऊँचा, समतल और शुभ्र था, उसी पर वृक्षों के किसलय बिछाये गये और उस आंसन को श्री लखनलाल जी ने अपने हाथों से रच-रचकर नव विकसित सुन्दर फूलों से आवृत्त कर सुसज्जित कर दिया । ऊपर से रुचिर मृगछाला भी बिछा दी । ऐसे आसन पर कृपालु श्रीरामचन्द्र जी आसीन हुए ।

एसि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन ।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लवलीन ।।

श्रीरघुनाथ जी ने अपना सिर सुग्रीव की गोद में टेक रखा है, उनकी

बाँयी ओर धनुष और दाहिनी ओर तरकस रखा है । सरकार एक बाण लेकर दोनों हाथों से उसे सुधार रहे हैं, विभीषण जी कानों के पास ही बैठे कुछ मंत्रणा दे रहे हैं, महाभाग्यवान श्रीहनुमान जी और अंगद जी चरण-कमल दाब रहे हैं और श्रीलखन लालजी भगवान के पीछे धनुष बाण हाथ में लिये कमर में तरकस कसे बीर आसन से विराजमान हैं । इस प्रकार कृपा, रूप और गुण के धाम श्रीरामचन्द्र जी आसीन हैं । वह मनुष्य धन्य है जो सदा इस ध्यान में अपने चित्त को लय किये रहता है ।

श्रीरघुनाथ जी दोनों पैर फैलाकर लेटे हुए से सुग्रीव की गोद में अपना मस्तक रखे हैं, उनके नेत्र पूर्व की ओर है, जिससे सरकार की दृष्टि सहज ही उगते हुए चन्द्रदेव पर पड़ती है और लीला से ही आपके श्रीमुख से एक प्रश्न निकल पड़ता है । श्री लखनलाल जी कुछ दूरी पर थे- यथा कछुक दूरि सजि बान सरासन । कुछ दूर रहने पर ही पहरे में विघ्नादि के निवारण करने की सुविधा रहती है और इस प्रकार की परिस्थिति का श्री लखनलाल जी को अभ्यास भी था, अत: वे दूर पर थे । इसी से वे प्रभु के इस प्रश्नोत्तर में सम्मिलित न हो सके । ये प्रश्नोत्तर प्रभु, सुग्रीव, विभीषण, अंगद और हनुमान में ही हुए ते । कैसा बिलक्षण राम पञ्चायतन है ? इसके ध्यान करने वाले धन्य हैं । स्वामी की कैसी महिमा है, जो स्थान भरतादि को प्राप्त है, वही स्थान अपनी असीम कृपा से कपियोनि तथा राक्षसयोनि को प्रदान किया गया है । किस स्वामी में ऐसी निजत्व भावना हो सकती है ?

को साहिब सेवकहि नेवाजी । आप समाज साज सब साजी ।।

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।

कहत सबहि देखहु ससिहि मृग पति सरिस अंसक ।।

कह प्रभु ससि मँहु मेचक ताई । कहहु काह निज निज मति भाई ।।

श्री सुग्रीव जी, विभीषण जी, अंगद जी और अन्त में श्री हनुमानजी ने अपनी-अपनी वृत्तियों के अनुसार प्रभु के प्रशन का उत्तर देते हैं । पवनपुत्र हनुमानजी के वचन सुनकर श्रीराम जी हँसे । फिर दक्षिण की ओर देख कर विभीषण से बोले- विभीषण दक्षिण की ओर तो देखो, कैसे बादल घुमड़ रहे हैं तथा बिजली भी चमक रही है । मन्द-मन्द गर्जन भी सुनायी पड़ रहा है, कहीं उपल वृष्टि न हो । विभीषण ने उत्तर दिया- कृपालु ! यह न तो बिजली है न मेघमाला है । बल्कि लंका के शिखर पर रावण नृत्य देख रहा है, उसका

राजछत्र उमड़े घन के समान देख पड़ता है और मन्दोदरी के कान ताटक का हिलना दामिनी के दमक समान भासता है तथा मृदंग की ध्वनि ही मेघ-गर्जन सी सुन पड़ती है ।

प्रभु मुसुकान समुझि अभियाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ।।

प्रभु श्रीराम ने एक ही बाण से छत्र-मुकुट-ताटंक सब हरण कर रावण के अभिमान को भंग कर दिया । यह रावण पर श्रीसरकार का पहला वार हुआ । लंका का युद्ध आरम्भ हुआ । श्रीरामचन्द्र जी ने सभी राक्षसों का संहार किया । कुम्भकरण, रावणादि का बध कर उन्हें मुक्ति प्रदान की । रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया । यह देखकर शिवजी और ब्रह्मा जी हर्षित हुये । देवता मुनि और सिद्ध सभी सुखी हो गये । रावण की मृत्यु पर अपने घर की सब स्त्रियों को रोती हुयी देखकर विभीषण जी मन में बड़ा भारी दुःख हुआ । प्रभु ने उनको (विभीषण) को कृपादृष्टि से देखा । सब शोक त्यागकर रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करने की आज्ञा दी । प्रभु की आज्ञा मानकर तथा देश-काल का विचार कर विभीषण जी ने विधिपूर्वक सब क्रिया की । क्रिया कर्म के बाद विभीषण जी पुनः प्रभु के पास आकर सिर नवाये ।

प्रभु की आज्ञा पाकर श्री लखनलाल जी बानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान और मारूतिनन्दन श्री हनुमान जी के साथ विभीषण को लेकर गये और उनका राजतिलक कर दिया । पिता के बचनों के कारण वे स्वयं नहीं जा सके । इस तरह समस्त लोकाधिराज श्रीरामचन्द्र जी ने श्री सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्रदान किया और श्री विभीषण जी को लंका का राजा बनाया ।

सुन्दर लंका काण्ड में प्रभु साहिबी देखात ।

दीन्ही राज विभीषनहि करि रावण को घात ।

सियावर रामचन्द की जय ।

●

'रघुराजू'

गई बहोरि गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।।

सीता लखन समेत प्रभु सोहत सहित समाज ।

देखो उत्तरकाण्ड में आय बने रघुराज ।।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र जी के अनेक नाम हैं । उन्हीं नामों में इनके नाम रघुराज एवं रघुवीर भी हैं जो इनके पूर्वज राजा रघु से सम्बंधित है । इनकी बंश परम्परा बहुत लम्बी है जो सूर्यबंश के नाम से जानी जाती है । इस बंश में अनेक प्रतापी राजा पैदा हुए हैं, उन्हीं राजाओं में राजा रघु बड़े प्रतापी राजा थे । इसी बंश में चक्रवर्ती सम्राट राजा दशरथ के पुत्र के रूप में परब्रह्म परमात्मा ने जन्म लिया । राजा दशरथ और रानी कौसल्या पूर्वजन्म में मनु और शतरूपा के रूप में घोर तपस्या की और परब्रह्म परमात्मा से अपने पुत्र रूप में जन्म लेने के लिए बर माँगा ।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।

ब्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन बिगत बिनोद ।

सो अज प्रेम प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।।

इनके नामकरण के अवसर पर गुरु बशिष्ट ने कहा- इनके नाम अनेक अनुपा ।

मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा । जो आनंद सिंधु सुखरासी ।।

सीकर तें भैलाक सुपासी । सो सुख धाम राम अस नामा ।।

अखिल लोक दायक बिश्रामा ।।

श्री नारदजी ने अरण्यकाण्ड में कहा है-

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक ते एका ।।

राम सकल नामन्ह तें अधिका । होउ नाथ अथ खग मन बधिका।।

सो प्रभु के अनेक नाम हैं और उन्हीं नामों में इनका एक नाम रघुराज और रघुवीर भी है ।

बिबाह के कुछ दिन पश्चात् राजा दशरथ अपनी वृद्धावस्था के कारण श्रीराम को अयोध्या के सिंहासन पर आरूढ़ करना चाहते थे किन्तु ऐसा न हो सका । प्रभु का अवतार तो बिप्र धेनु सुर संत के हित के लिए हुआ था । अतः अयोध्या का राज न मिल इन्हें बन का राज्य मिला जहाँ पर इन्होंने निशाचरों का विनाश कर सन्तों, मुनियों और देवताओं की रक्षा की । चक्रवर्ती सम्राट जिस कार्य को न कर सके श्री भरतजी ने वह कार्य कर दिखलाया । श्री भरतजी ने चित्रकूट में ही श्रीराम का राज्याभिषेक किया और चौदह वर्ष तक प्रभु के पावरी के आदेश से अयोध्या के राज्य का संचालन किया । बनबास की अवधि समाप्त होने पर प्रभु अयोध्या वापस आते हैं । अयोध्यावासियों द्वारा प्रभु का स्वागत होता है ।

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब गुरहि सुनाए ।।
पुनि मंदिर मँह बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ।।
सुनत सकल जननी उठि धाईं । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए ।।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला । नव तुलसी दल मंगल मूला ।।
भरि भरि हेम थार भामिनी । गावत चलिं सिंधुर गामिनी ।।

प्रभु को देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए । वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गए । सब लोगों को प्रेम बिह्वल देखकर कृपाल श्रीराम जी ने एक चमत्कार किया । उसी समय कृपालु श्रीराम जी असंख्य रूपों में प्रगट हो गये और सबसे एक ही साथ मिले । श्रीरघुबीर ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर नारियों को शोक से रहित कर दिया ।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा जोग मिले सबहि कृपाला ।।
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ।।

कृपा के सिन्धु श्रीराम जी अपने महल को गये तब नगर-नगर के स्त्री पुरुष सब सुखी हुए । गुरु बसिष्ट ने ब्राह्मणों को बुला लिया और कहा- आज शुभ घड़ी है, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग है । आप सभी ब्राह्मण प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिए जिससे श्रीरामचन्द्र जी सिंहासन पर विराजमान हों । सभी ब्राह्मणों ने कहा- "हे मुनिश्रेष्ठ ! अब विलम्ब न कीजिए और महाराज

का तिलक शीघ्र कीजिये। सबसे पहले मुनि बसिष्ठ ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। पुत्र को राजसिंहासन पर देखकर सभी माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी।।

प्रभु के सिंहासनारूढ़ होने पर आकाश में बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं, अप्सराओं के झुंड के झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परम आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी, विभीषण जी, अंगद, हनुमान और सुग्रीव आदि सहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढ़ाल और शक्ति लिये हुए सुशोभित हैं। श्री सीताजी सहित सूर्यवंश के विभूषण श्री रामजी के शरीर में अनेक कामदेवों की छवि शोभा दे रही है। प्रभु के सुन्दर श्याम शरीर पर पीताम्बर देवताओं के मन को मोहित कर रहा है। मुकुट बाजूबन्द आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती और लम्बी भुजायें हैं। जो उनके इस स्वरूप का दर्शन करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं।

वह शोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।

बरनहिं सारद सेषश्रुति सो रस जान महेस।।

सभी देवता प्रभु की स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गये। भाटों का रूप धारण करके चारों बेद आये और उन्होंने रघुनाथ श्रीराम की स्तुति की।

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।

दसक धारादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हमे।।

अवतार नर संहार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।

जय प्रनतपाल दयाल प्रभु सनुंक्त शक्ति नमाम हे।।

बेदों ने सबके देखते हुए यह श्रेष्ठ बिनती की। फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक को चले गये।

तब शिवजी वहाँ आये और गदगद वाणी से स्तुति करने लगे।

जय राम रमारमनं समनं, भवताप भयाकुल पाहि जनं।

अवधेस सुरेस रमेस विभो सरनागत माँगत पाहि प्रभो।।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।

तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ।।

बानर सब ब्रह्मानंद में मग्न हैं । प्रभु के चरणों में सबका प्रेम है । उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और बात ही बात में छः महीने बीत गये । तब श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया, बड़े प्रेम से उनको अपने पास बैठाया और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की । श्रीराम ने उनसे कहा-

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।

सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम ।।

प्रभु श्रीराम ने अपने सभी सखाओं और सेवकों का उचित सम्मान किया और नाना प्रकार के उपहारों से अलंकृत कर उन्हें बिदा किया । सभी भगवान के चरण कमलों को हृदय में रखकर अपने-अपने घर गये । सभी ने घर जाकर प्रभु के व्यवहार और स्वभाव का वर्णन किया ।

श्री रघुनाथजी यह चरित्र देखकर अवधपुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुख की राशि श्रीरामचन्द्र जी धन्य हैं ।

राम राज बैठें भैलोका । हरषित भए गए सब सोका ।।

श्रीरामचन्द्र के राज्य पर प्रतिष्ठित होते ही उनके प्रताप से सारी विषमतायें समाप्त हो गयी । सब लोक अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं । उन्हें न किसी का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है । रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को भी नहीं व्यापते । सभी मनुष्य आपस में प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं । सर्वत्र धर्म का राज्य है, स्वप्न में भी पाप नहीं है । सभी नर नारी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति के अधिकारी हैं । अल्प अवस्था में मृत्यु नहीं होती और न किसी को कोई पीड़ा होती है । सभी सुन्दर और निरोग हैं । न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन है । न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन है । सभी पुरुष और स्त्री चतुर, गुणवान, कृतज्ञ और ज्ञानी हैं । कपट, दंभ और धूर्तता से रहित हैं । सभी पुण्यात्मा हैं ।

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म स्वभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ।।

सभी नर नारी उदार हैं, परोपकारी हैं, ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं और स्त्रियाँ पतिब्रता हैं।

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ।।

मनुष्य की कौन कहे पशु-पक्षी भी अपने स्वाभाविक बैर भुलाकर आपस में प्रेम से रहते हैं।

फूलहि फरहिं सदा तरु कानन । रहहि एक सँग गज पंचानन ।।

धरती सदा खेती से भरी रहती है, गौए मनचाहा दूध देती हैं और वृक्ष माँगने से मधु टपका देते हैं। यहाँ तक कि माँगे वारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसो दिशायें अत्यन्त प्रसन्न हैं। सुन्दर बाजार हैं जहाँ बजाज, सराफ आदि बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े सभी सुखी, सदाचारी और सुन्दर हैं।

रमानाथ जँह राजा सो पुर बरनि कि जाइ ।

अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ ।।

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्रीराम के दर्शन के लिए नित्य अयोध्या आते हैं और उस दिव्य नगर को देखकर बैराग्य भुला देते हैं। अयोध्या में घर-घर पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र राम चरित्रों की कथा होती है। सभी श्रीरामचन्द्र जी का गुणगान करते हैं। इस तरह उनका जीवन इतना सुखमय और आनन्दमय व्यतीत होता है कि दिन-रात बीतना बी नहीं जान पड़ता। जहाँ भगवान श्रीरामचन्द्र जी स्वयं राजा होकर बिराजमान हैं उस अवधपुरी के निवासियों के सुख-सम्पत्ति के समुदाय का वर्णन हजारों शेष भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाजा ।

सहस सेष नहि कहि सकहिं जँह नृप राम विराज ।।

एक बार रघुनाथ बोलाए । गुरु द्विज पुरबासी सब आए ।।

एक बार प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने एक सभा की और उसमें गुरु बसिष्ठ जी, ब्राह्मण और सब नागरिकों को बुलाया। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा

सभी नागरिक यथा योग्य स्थान पर बैठ गए तो भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्रीराम जी ने इस प्रकार कहा-

हे समस्त नगर निवासियों ! मेरी बात ध्यान से सुनिये । यह बात मैं हृदय में ममता लाकर नहीं कहता हूँ । न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है । इसलिए संकोच और भय छोड़कर मेरी बात सुन लो और यदि तुम्हें अच्छी लगे तो उसके अनुसार आचरण करो । वही मेरा सेवक और प्रियतम है जो मेरी आज्ञा माने । फिर उन्होंने कहा- हे भाई ! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो बिना किसी भय के निःसंकोच मुझे रोक देना । प्रभु के इन बचनों में कितनी विनम्रता और प्रजा वत्सलता के भाव भरे हुए हैं । इस तरह उन्होंने बड़े ज्ञान और आध्यात्म की बातें अपनी प्रजा के सामने कहा ।

बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्ह गावा ।।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।

कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोस लगाइ ।।

बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है । यह मानव शरीर देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ऐसा सब ग्रंथों ने कहा है । यह मानव शरीर साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है । इसी मानव शरीर में ही जीव साधना कर परम धाम को प्राप्त कर सकता, देवताओं सहित अन्य योनियाँ तो केवल भोग योनि ही हैं । अतः इसे प्राप्त कर जिसने परलोक न बना लिया वह परलोक में दुःख पाता है और सिर पीट-पीट कर पश्चाताप करता है तथा अपना दोष न समझकर काल पर, कर्म पर, और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है । हे भाई ! इस मानव शरीर के प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है । इस जगत के भोगों की बात ही क्या स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है । अतः जो लोग मनुष्य शरीर प्राप्त कर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर उसके बदले में विष ले लेते हैं । ऐसे मनुष्यों को जो पारसमणि को खोकर बदले में घुमची ले लेता है कोई भी बुद्धिमान नहीं कह सकता । यह तो उसकी अज्ञानता का ही प्रमाण है । यह अविनाशी जीव सदा चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है । माया के प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा

हुआ सदैव इस संसार में भटकता रहता है । बिना कारण के हीं स्नेह करने वाले कृपालु भगवान इस जीव को मनुष्य शरीर देते हैं ।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।।

करनधार सदगुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।

जो न तरे भवसागर नर समाज अस पाइ ।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ।।

जो मनुष्य ऐसे सुलभ साधन पाकर भी भवसागर से पार नहीं होता वह कृतघ्न और मन्द बुद्धि वाला है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है । इसलिए मेरे राज्य में रहने वाले सभी नागरिक भाइयों यदि आप लोग परलोक और इस लोक में सुख पाना चाहते हैं तो मेरे बचन सुनकर अपने हृदय में धारण करें और दृढ़ता के साथ उसे आचरण में उतारे । यह मेरी भक्ति का मार्ग बड़ा ही सुलभ और सुखदायक है । बेदों और पुराणों ने भी इसी भक्तिमार्ग का उपदेश दिया । भक्ति का यह मार्ग स्वतंत्र और सुखों की खान है । संतों के संग से ही यह प्राप्त होता है । भक्ति मार्ग के साथ-साथ राजा राम ने नगरवासियों को ज्ञान मार्ग का भी उपदेश दिया । उन्होंने कहा- ज्ञान का मार्ग अगम है । उसकी प्राप्ति में अनेक बिघ्न हैं । उसका साधन कठिन है क्योंकि उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है । बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा लेता है, तो वह भी भक्ति रहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता । उन्होंने लोगों से प्रश्न करते हुए कहा-

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा ?

भक्ति करने के लिए न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवास की । सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो, यथा लाभ सन्तोष रखता हो वह बड़ी आसानी से मेरी भक्ति प्राप्त कर लेता है । इसके पश्चात् कुछ आचरण में आने वाली बातों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा- न किसी से बैर करे, न लड़ाई झगड़ा करे, न आशा रखे और न किसी से भय करे । उसके लिए सभी दिशायें सदा सुखमयी हैं । जो कोई फल की इच्छा से कर्म नहीं करता, जो अनिकेतन है, मानहीन, क्रोधहीन और पापहीन है वह ही निपुण और विज्ञानवान है । इस तरह ममता, मोह और मद से रहित होकर मेरे नाम के परायण हो जाता है वह परमानन्द राशि को प्राप्त हो जाता है । इस तरह श्रीरामचन्द्र जी अमृत के समान बचन सुनकर

अति प्रसन्न हुए ।

फिर सभी लोग प्रभु की आज्ञा पाकर उनकी सुन्दर बातचीत का आपस में वर्णन करते हुए अपने-अपने घर चले गये ।

निज निज गृह गए आयसु पाई । बरंनत प्रभु बतकही सुहाई ।।

प्रभु श्रीराम जी अपने राज्यकाल में करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिये । श्रीरामचन्द्र जी बेद मार्ग के पालने वाले, धर्म की धुरी धारण करने वाले, प्रकृतिजन्य गुणों से अतीत और भोगों में इन्द्र के समान हैं । इतिहास में न आज तक कोई ऐसा राजा हुआ है और न होगा।

कोटिन्ह बाजिमेघ प्रभु कीन्हें । दान अनेक द्विजन कहँ दीन्हे ।।

श्रुति यथ पालक धर्म धुरंधर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ।।

इस प्रकार उत्तरकाण्ड में प्रभु श्रीराम रघुराज बन कर अपनी सारी प्रजा को सुख और आनन्द दिये ।

सीता लखन समेत प्रभु सोहत सहित समाज ।

देखो उत्तरकाण्ड में आय बने रघुराज ।।

गई बहोरि गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।।

श्रीरामचरितमानस की इस चौपाई के माध्यम से मैंने सदगुरुदेव द्वारा दिए हुए प्रवचन का उल्लेख आप लोगों के समक्ष लिखित रूप में किया ।

बोलिए सियाबर रामचन्द की जय ।

पवनसुत हनुमान की जय ।

उमापति महादेव की जय । हर हर महादेव ।

अन्त में बोलिए सदगुरुदेव की जय ।

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो । प्राणियों में सदभावना हो । विश्व का कल्याण हो ।

।। जय जय जय सीताराम ।।

●

'सत पंच चौपाई'

सत पंच चौपाई मनोहर जाति जो नर उर धरै ।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै ।।

प्रस्तुत छंद में सत पंच का तात्पर्य क्या है ? सत पंच चौपाई कौन है ? और कैसे है ?

बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।
आय पाय पुनि देखहउँ मनु जनि करसि मलान ।।

बरस चारिदस का तात्पर्य चौदह वर्ष से है । अर्थात् यहाँ पर चार और दस को जोड़ा गया है । अत: सत पंच का भी तात्पर्य बारह से है । यहाँ भी सात और पाँच के जोड़ने से बारह होता है । रामचरितमानस के बालकाण्ड में दोहा १९८ और १९९ के बीच में बारह चौपाई है जबकि इसके पहले और बाद में भी दो दोहों के बीच केवल आठ-आठ चौपाइयाँ ही हैं । ये चौपाइयाँ निम्नलिखित हैं ।

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगतिबस कौसल्या के गोद ।।

काम कोटि छबि स्याम सर्वरा । नीलकंज बारिद गंभीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ।।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपूर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ।।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गभीर जान जिनि देखा ।।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ।।
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्रचरन देखत मन लोभा ।।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ।।
दुइ दुइ दसन अधर अरुवारे । नासा तिलक को बरनै पारे ।।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ।।
पीत झगुलिया तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ।।
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ।।
सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ।।
सुख समेत संपत दुइ साता । पल सन होहिं न जानहिं जाता ।।

इस चौपाई में दुइ साता का तात्पर्य चौदह से है । अर्थात् यहाँ दो और सात का गुणा किया गया है । अतः सत पंच का तात्पर्य पैंतीस भी हो सकता है । सात का पाँच में गुणा करने पर पैंतीस होता है । रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि जी ने गरुणजी को पैंतीस चौपाइयों में सारी राम कथा सुना दी है ।

प्रथमहि अति अनुराग भवानी । रामचरित सर कहेसि बखानी ।
पुनि नारद कर मोह अपारा । कहेसि बहुरि रावन अबतारा ।।
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई । तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ।।
बालचरित कहि विविधि बिधि मन मँह परम उछाह ।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह ।।
बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा । पुनि नृप बचन राज रस भंगा ।।
पुर बासिन्ह कर बिरह बिषादा । कहेसि राम लछिमन संबादा ।।
बिपिन गवन केवट अनुरागा । सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ।।
बालमीक प्रभु मिलन बखाना । चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ।।
सचिवागवन नागर नृप मरना । भरता गवन प्रेम बहु बरना ।
करि नृप क्रिया संग पुरवासी । भरत गए जँह प्रभु सुख रासी ।।
पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए । लै पादुका अवधपुर आए ।।
भरत रहनि सुरपति सुत करनी । प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ।।
कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग ।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ।।

कहि दंडक बन पावन ताई । गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई ।
पुनि प्रभु पंचबटी कृत बासा । भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा ।।
पुनि लछिमन उपदेस अनूपा । सूपनखा जिमि कीन्ह कुरुपा ।।
खर दूषन बध बहुरि बखाना । जिमि सब मरम दसानन जाना ।।
दसकंधर मारीच बतकही । जेहि विधि भई सो सब तेहिं कही ।।
पुनि माया सीता कर हरना । श्री रघुबीर बिरह कछु बरना ।।
पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही । बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही ।।
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा । जेहि बिधि गए सरोबर तीरा ।।

प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग ।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग ।।
कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास ।
बरनन वर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास ।।

जेहि विधि कपिपति कीस पठाए । सीता खोज सकल दिसि धाए ।।
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती । कपिन्ह बहोरि मिला संपाती ।।
सुनि सब कथा समीर कुमारा । नाघत भयउ पयोधि अपारा ।।
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा । पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा ।।
बन उजारि रावनहि प्रबोधी । पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी ।।
आए कपि सब जँह रघुराई । बैदेही की कुसल सुनाई ।।
सेन समेत जथा रघुबीरा । उतरे जाइ बारिनिधि तीरा ।।
मिला विभीषन जेहि बिधि आई । सागर निग्रह कथा सुनाई ।।

सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार ।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार ।।
निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार ।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार ।।

निसिचर निकर मरन विधि नाना । रघुपति रावन समर बखाना ।।

रावन बध मंदोदरि सोका । राज बिभीषन देव असोका ।।
सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरन्ह कीन्ह अस्तुति करि जोरी ।।
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता । अवध चले प्रभु कृपा निकेता ।।
जेहि बिधि राम नगर निज आए । बायस बिसद चरित सब गाए।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका । पुर बरनत नृप नीति अनेका ।।
कथा समस्त भुसुंड बखानी । जो मैं तुम्ह सन कही भवानी ।
सुनि सब राम कथा खगनाहा । कहत बचन मन परम उछाहा ।।

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।
भयउ राम पद नेह तब प्रसाद बायस तिलक ।।
मोहिं भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि ।
चिदानंद संदोह राम विकल कारन कवन ।।

सियावर रामचन्द की जय ।

●

भगवान के निवास के चौदह स्थान

देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आश्रम प्रभु आए ।

प्रभु श्रीराम ने मुनिराज बालमीकि से कहा-

अस जियँ जानि कहिय सो ठाऊँ । सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।।
बालमीकि हँसि कहहि बहोरी । बानी मधुर अमिय रस बोरी ।।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।
जिनके श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सर नाना ।।
भरहि निरंतर होहिं न पूरे । तिन्हाके हिय तुम कहुँ गृह रूरे ।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।।
तिन्हा के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ।।

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ।।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहइ नित नासा ।।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरही ।।
सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विसेषी ।।
कर नित करहि राम पद पूजा । राम भरोस हृदय नहि दूजा ।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।
मंत्र राजु नित जपहि तुम्हारा । पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा ।।
तरपन होम करहिं विधि नाना । बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना ।।

तुम्ह ते अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भाय सेवहिं सनमानी ।।

सब करि मागहिं एक फलु रामचरन रति होउ ।

तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ।।

काम मोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।

जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ।।

सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोबत सरन तुम्हारी ।।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसर नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।

जननी सम जानहि परनारी । धनु पराव विषते विष भारी ।।

जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं पर बिपति विसेषी ।।

जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्हा के मन सुभ सदन तुम्हारे ।।

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्हके सब तुम्ह तात ।

मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ।।

अवगुन तजि सबके गुन गहरीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ।।

नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनुनीका ।।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहिं सब भाँति तुम्हार भरोसा ।।

राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उस बसहु सहित बैदेही ।।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।

सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ।।

सरगु नरकु अपबरगु समाना । जँहँ तहँ देखि धरें धनु बाना ।।

करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कें उर डेरा ।।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।

बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ।।

सियाबर रामचन्द की जय ॥

कल काल जीव निरन्तर हेतु बाल्मीकि तुलसी भयो ।

ऐसा कहा जाता है कि बाल्मीक मुनि ही तुलसीदास के रूप में कलि

में अवतरित हुए हैं । ऐसा रामचरितमानस में प्रमाण है । श्रीरामचरिमानस के अयोध्याकाण्ड में सन्त तुलसीदास प्रत्येक पचीस दोहों के पश्चात् एक छंद की रचना करते हैं और प्रत्येक छंद में अपना नाम तुलसी अवश्य लिखते हैं । किन्तु बालमीक आश्रम में पहुँचने पर जिस छंद से बालमीक जी श्रीराम की स्तुति करते हैं उसमें तुलसीदास अपना नाम नहीं लिखते हैं । यथा-

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ।।
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखन सचराचर धनी ।
सुरकाज धरि नर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ।।

इससे सिद्ध होता है कि बालमीक ही तुलसीदास के रूप में अवतरित हुये हैं ।

संत शिरोमणि तुलसीदास की जय ।